# सरस्वती
# हीरक जयन्ती अंक

१९०० – १९५९

( सरस्वती हीरक जयन्ती समारोह समिति के आदेशानुसार प्रस्तुत )

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी





प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड

इलाहाबाद

१९६१

# सरस्वती हीरक जयन्ती समारोह समिति

संरक्षक
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

अध्यक्ष
पद्मभूषण डा० मैथिलीशरण गुप्त



उपाध्यक्ष
डा० माखनलाल चतुर्वेदी
माननीय हरिभाऊ उपाध्याय
पद्मभूषण श्री शिवपूजन सहाय
पद्मभूषण श्री रामधारीसिंह दिनकर
पंडित कमलापति त्रिपाठी
डा० कमलाकान्त वर्मा
श्री हरिप्रसन्न घोष



मंत्री
श्रीनारायण चतुर्वेदी

संयुक्त मंत्री
डा० उदयनारायण तिवारी
डा० रामशंकर द्विवेदी

प्रबंध-मंत्री
श्री हरिभूषण घोष

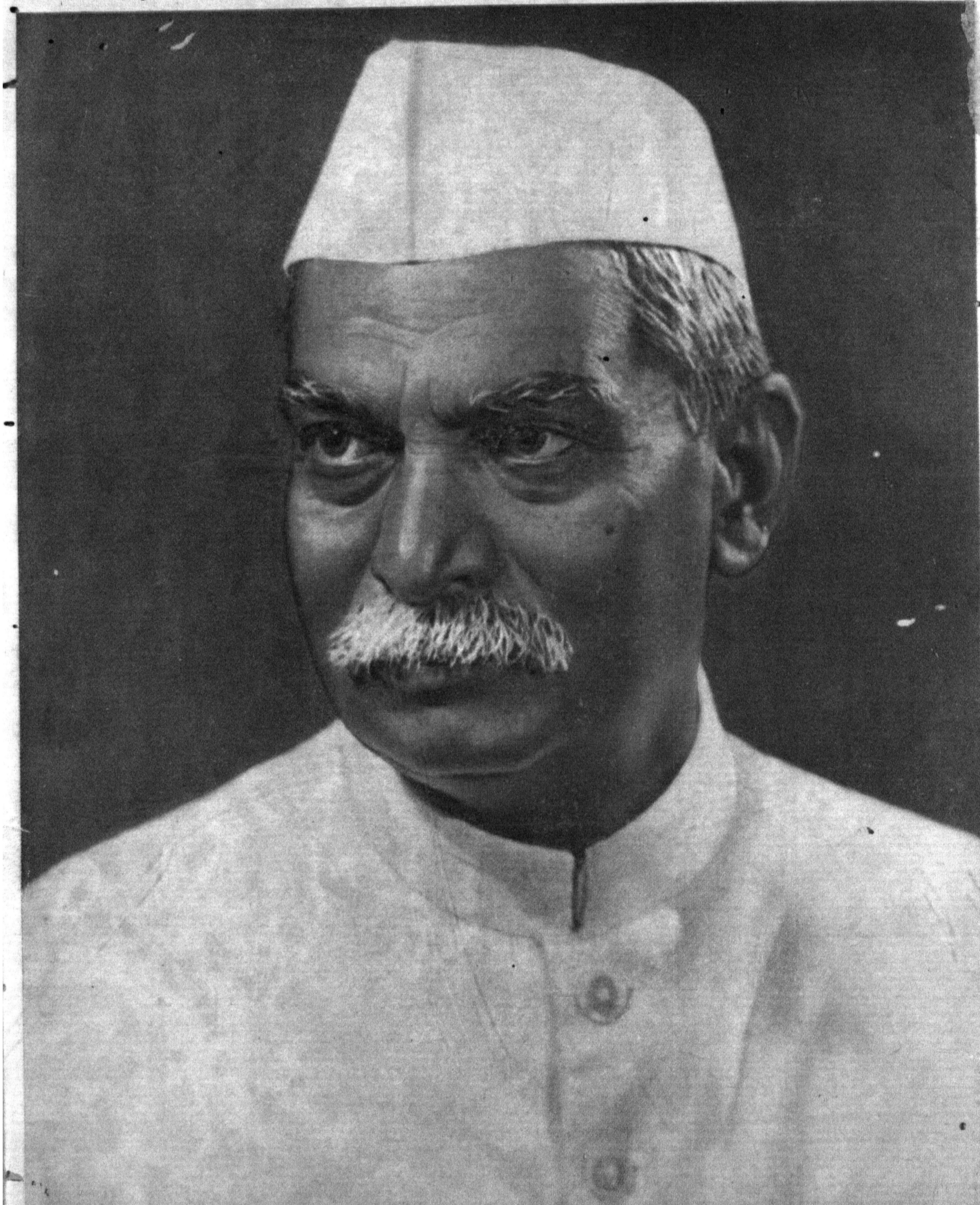
अर्थ-मंत्री
श्री पुरुषोत्तमदास टंडन

कार्यकारिणी के सदस्य
श्री चि० बालकृष्ण राव
श्री ब्रजमोहन व्यास
श्री पद्मकान्त मालवीय
श्री नरेन्द्रनाथ मुकर्जी

(सदस्यों की सूची अलग प्रकाशित की गई है)

प्रकाशक
बी० एन० माथुर
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

मुद्रक
पी० एल० यादव
इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद

हिन्दी के अनन्य भक्त, विद्वान् और उन्नायक
हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति
देशरत्न
साहित्यवाचस्पति
भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति
महामहिम

# डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी

के
कर-कमलों में
सरस्वती
का
यह हीरक जयंती अंक
सरस्वती हीरक जयंती समारोह समिति
द्वारा
श्रद्धापूर्वक
सादर

# समर्पित

स्वीकुरु राजेन्द्र !

राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली — रविवार ३१, दिसम्बर १९६१

# भूमिका

सरस्वती का साठ साल तक लगातार प्रकाशन हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की एक अपूर्व घटना है। यद्यपि यह पत्रिका एक निजी संस्था द्वारा प्रकाशित होती है और कानून की दृष्टि से उसकी सम्पत्ति है तथापि अपनी दीर्घकालीन और अपूर्व सेवाओं के कारण नैतिक दृष्टि से यह हिंदी संसार की अपनी वस्तु हो गयी है। उसे राष्ट्रीय साहित्यिक पत्रिका होने का गौरव प्राप्त हुआ है। भारतीय भाषाओं में, विशेषकर हिंदी में, पत्र-पत्रिकाएँ प्रायः अल्पायु होती हैं। सरस्वती का साठ वर्ष जीवित रहना अपने आप में एक ऐसी घटना है जिससे हिंदी-प्रेमियों को बड़ा हर्ष हुआ। इस अवसर पर हिंदी-प्रेमियों ने एक समिति बनाकर उसकी हीरक-जयंती मनाने का आयोजन किया। उस आयोजन का एक अंग उसके हीरक-जयंती अंक का प्रकाशन था। इसका भार मुझे सौंपा गया।

विशेषांकों का निकालना बड़ा कठिन काम है। उसमें एक निर्धारित विषय पर लेख होते हैं और उनके लिखने के लिए अधिकारी लेखकों को ढूँढ़ने में, और फिर उनसे लेख लिखाने में, बड़ी कठिनाई होती है। मेरा अनुभव है कि कठिन परिश्रम करने पर भी विशेषांक के आकार को भरने के लिए अच्छे लेख बहुत कम मिलते हैं। कितने ही भर्ती के लेख देने पड़ते हैं। कठिन परिश्रम और अपार व्यय करने पर भी ऐसे विशेषांक कम ही निकल पाते हैं जिनका स्थायी महत्त्व हो। इसलिए मैंने यह विशेषांक नये ढंग से निकालने का निश्चय किया। सरस्वती का इतिहास वास्तव में हिंदी के पिछले साठ वर्षों का इतिहास है। अतएव यह निश्चय किया गया कि साठ वर्ष की जयंती के उपलक्ष में सरस्वती में पिछले साठ वर्षों में जो लेख, कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित हुई हैं, उनमें से साठ लेख, साठ कहानियाँ और साठ कविताएँ चुनकर विशेषांक में छापी जायें। सरस्वती में प्रकाशित साठ रंगीन कलापूर्ण चित्र भी उसमें सम्मिलित किये जायँ। योजना बन गयी और चुनाव का काम आरंभ हो गया।

किंतु जब चुनाव करने का काम हाथ में लिया गया तब तरह-तरह की समस्याएँ उपस्थित हुईं। क्या सर्वोत्तम लेख, कहानियाँ और कविताएँ ही ली जायें? साठ वर्षों में सरस्वती में कई हजार लेख आदि प्रकाशित हुए। उनमें से ६० सर्वोत्तम लेखों का चुनना बड़े उत्तरदायित्व का ही नहीं, बड़े विवेक का काम था। फिर, संभव है कि बहुत से सर्वोत्तम लेख सर्वोत्तम लेखकों के न हों। क्या विशेषांक में सर्वोत्तम लेखकों का ध्यान न रखा जाय? सरस्वती में पिछले साठ वर्षों में हिंदी के प्रायः सभी प्रमुख लेखकों और कवियों ने लिखा है। इनमें से किन्हें छोड़ा जाय? खड़ी बोली की कविता के विकास में सरस्वती का जो योगदान है, वह सर्वविदित है। सैकड़ों कवियों की कविताएँ सरस्वती में प्रकाशित हुईं जिनसे खड़ी बोली काव्य के विकास की कहानी मालूम हो सकती है। साठ की सीमित संख्या में उन्हें किस प्रकार बाँधा जा सकता है? लेखकों में ही देखा गया कि सरस्वती के लेखक कई श्रेणियों के हैं। एक तो वे जो विशुद्ध साहित्यिक हैं; दूसरे वे जो किसी विषय के विद्वान् हैं किंतु हिंदी-प्रेम के कारण अपने अपने विषय पर हिंदी में लेख लिखते रहे हैं; तीसरे वे जो उच्च अधिकारी हैं, और हिंदी-प्रेम के कारण अवकाश के क्षणों में हिंदी-सेवा करते रहे हैं; और चौथे वे राजनीतिक नेता तथा कार्यकर्ता हैं जो हिंदी-सेवा की भावना से सरस्वती में लिखते रहे हैं। साठ वर्षों में प्रत्येक वर्ग के सैकड़ों सज्जनों ने सरस्वती में लेख लिखे हैं। साठ लेखों में इन चारों वर्गों के लेखकों को सम्मिलित कर लेना असंभव था। अतएव अंत में १०८ कवियों, ६० कहानीकारों और १०० लेखकों की कृतियाँ लेने का निश्चय किया गया।

ये संख्याएँ भी अपर्याप्त थीं, किंतु विशेषांक का कलेवर इतना बढ़ा जा रहा था कि कोई न कोई सीमा निर्धारित करना आवश्यक हो गया। कितने ही लेखकों को, जिन्हें हम सम्मिलित करना चाहते थे, स्थाना-

भाव से हम सम्मिलित नहीं कर सके। इसके लिए हमें बहुत खेद है। किंतु हमें आशा है कि हमारी सीमाओं और असमर्थता पर विचार कर हमारे वे लेखक, जिनको हम स्थान नहीं दे सके, हमें क्षमा करेंगे।

हमने प्रत्येक वर्ग के लेखकों का चुनाव कर लिया। चुनते समय उनके महत्त्व का ध्यान रखा गया, किंतु अब प्रश्न यह आया कि उनका कौन सा लेख लिया जाय। सामान्यतः हमने प्रत्येक लेखक के प्रथम लेख चुनने का प्रयत्न किया है, क्योंकि उनके 'सर्वोत्तम' लेख का चुनाव करना अत्यंत कठिन कार्य था। कवियों में हमने कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण कवियों की प्रथम कविताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य कविताएँ भी दी हैं।

कहानियों का खंड अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिंदी की पहिली आधुनिक कहानी 'इंदुमती' सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। तब से हिंदी के कहानी-साहित्य का विकास, कम से कम प्रथम चरण में, सरस्वती में ही हुआ। लाला पार्वतीनंदन, भगवानदास, बंग महिला, पं० रामचंद्र शुक्ल ने उसे आगे बढ़ाया। बाबू वृंदावन लाल वर्मा की पहिली कहानी १९०९ में सरस्वती में छपी। पं० चंद्रधर गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती ही में छपी। मुंशी प्रेमचंद की पहिली हिंदी कहानी भी सरस्वती में छपी। सुदर्शन, कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा आदि पुरानी पीढ़ी के हिंदी कहानीकारों ने सरस्वती ही के द्वारा अपनी कला का विकास किया। इतना ही नहीं, सरस्वती ने दूसरी भाषाओं की कहानियों का भी परिचय हिंदी पाठकों को कराया। रवीन्द्रनाथ टागोर की कोई कहानी तब तक किसी भारतीय भाषा में अनुवादित और प्रकाशित नहीं हुई थी। सरस्वती ने १९०३ में पहिली बार उनकी एक कहानी का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित कर के भारतीय भाषाओं में हिंदी को गुरुदेव की एक कृति का प्रथम अनुवाद प्रकाशित करने का गौरव प्रदान किया। उसी प्रकार, प्रथम वर्ष में ही सरस्वती ने अँगरेजी कहानियों के आधार पर हिंदी में सर्वप्रथम वैज्ञानिक कहानियों का प्रकाशन किया। तब से हिंदी के प्रमुख कहानीकारों ने सरस्वती को अपनी कृतियों के प्रकाशन का माध्यम रखा है।

चित्रों के चयन में यह ध्यान रखा गया है कि राजा रविवर्मा से लेकर खास्तगीर तक के प्रमुख भारतीय कलाकारों के चित्र (जो सरस्वती में प्रकाशित हो चुके हैं) इस अंक में दिये जायें जिससे पिछले साठ वर्षों के भारतीय चित्रकला के विकास का मूर्त आभास पाठकों को मिल सके। इनके अतिरिक्त पहाड़ी, राजस्थानी और मुगल शैलियों के भी कुछ चित्र दिये गये हैं जिनसे प्राचीन भारतीय चित्र-कला का पुनर्परिचय भी हमारे पाठकों को मिल सके।

हमारी बड़ी अभिलाषा थी कि साठ वर्ष में सरस्वती में जो लेख, कहानियाँ और कविताएँ छपी हैं, उनकी विषयानुसार या लेखक क्रम से सूचियाँ तैयार करके प्रकाशित करें, जिससे शोधकार्य करने वालों तथा अन्य विद्वानों को अपने कार्य में सुविधा हो। हमने वह सूची तैयार भी की। किंतु तैयार करने पर मालूम हुआ कि छपने पर वह ५०० पृष्ठों से भी अधिक की होगी। उसका छापना हमारे वर्तमान साधनों से परे है। इसलिए हमें खेद है कि हम इस महत्त्वपूर्ण सूची को प्रकाशित नहीं कर सके।

इसी प्रकार हम चाहते थे कि सरस्वती में जो सम्पादकीय टिप्पणियाँ निकली हैं, उनमें से चुनकर प्रायः सौ पृष्ठों का एक खंड अलग तैयार किया जाय। ये टिप्पणियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें तत्कालीन महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर बड़े मार्मिक विचार व्यक्त किये गये हैं। हिंदी भाषा और हिंदी आंदोलन संबंधी टिप्पणियाँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनसे हिंदी आंदोलन का, और हिंदी भाषा और साहित्य की तत्कालीन समस्याओं का बड़ा रोचक इतिहास मालूम हो जाता है। यह कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, और होना चाहिए। हमें खेद है कि स्थानाभाव से हम उसे भी इस अंक में सम्मिलित नहीं कर सके।

हमने सरस्वती में प्रकाशित कुछ पुराने विज्ञापनों के नमूने भी इस अंक में दिये हैं। इनसे आज से पचास-साठ वर्षों पहिले की विज्ञापन-कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

सरस्वती के आवरणों का भी अपना महत्त्व है। इस अंक के प्रथम (कविता) खंड के आरंभ में सरस्वती की पहिली संख्या का आवरण दिया गया है। दूसरे (कहानी) खंड का आरंभ द्विवेदीजी के समय की सरस्वती के आवरण से हुआ है, और तीसरे (लेख) खंड में हाल के एक दीपावली अंक का आवरण लगाया गया है जो प्रसिद्ध चित्रकार श्री देवकृष्ण जोशी की कृति है। आशा है कि इनसे पाठकों का मनोरंजन होगा।

हमने लेखों का सम्पादन करने का प्रयास नहीं किया। लेखों में जो अखरौटी (स्पैलिंग) थी, हमने वही रखी है। शब्दों और मुहावरों के मूल प्रयोगों को ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। आशा है कि इनसे पचास वर्ष पहिले की भाषा का रूप पाठकों के सामने आ जायगा। हमारा ध्येय यह रहा है कि इस अंक में लेखों के विषयों और लेखकों का चुनाव इस प्रकार किया जाय कि पाठकों के सामने हिंदी के साठ वर्षों के विकास का एक विहंगम दृश्य उपस्थित हो जाय। हम नहीं जानते कि इसमें हमें कितनी सफलता मिली है।

यह विशेषांक महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी को समर्पित है। हम इसमें इसी अवसर के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया उनका एक चित्र देना चाहते थे। माननीय राष्ट्रपति ने कृपावंत होकर चित्र बनाने की आज्ञा भी दे दी। हमारे आग्रह से इंदौर राजकीय कला महाविद्यालय के आचार्य और सिद्ध चित्रकार श्री देवकृष्ण जोशी ने राष्ट्रपति भवन में जाकर उनका एक चित्र तैयार किया। यह एक श्रेष्ठ कलाकृति है और एक प्रथम श्रेणी का "इम्प्रेशनिस्ट" अध्ययन है। इस अंक का आवरण प्रसिद्ध चित्रकार श्री असित-कुमार हालदार ने बनाने की कृपा की है। उनके इस सहयोग और सहायता के लिए हम इन दोनों प्रसिद्ध कलाकारों के अत्यंत आभारी हैं।

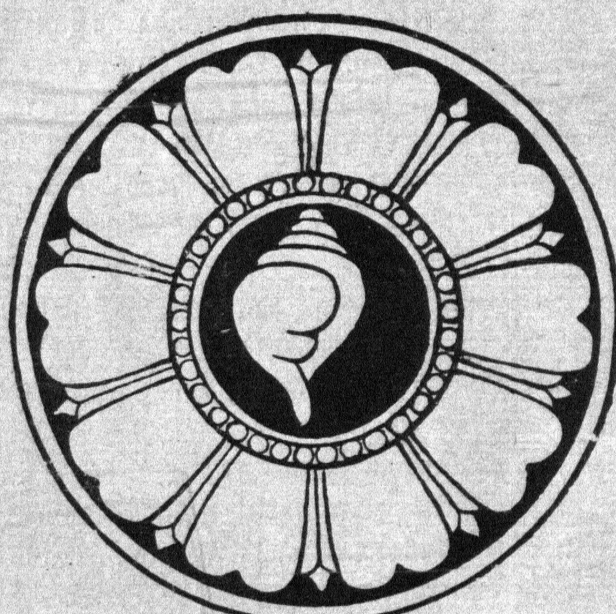
मैं सोचता हूँ कि मैंने यह उत्तरदायित्व लेकर भूल की, क्योंकि मेरा जीवन अत्यंत व्यस्त है और महीने में पंद्रह दिन मुझे प्रवास में रहना पड़ता है। कुछ दिन लखनऊ में, और कुछ ही दिन प्रयाग में बीतते हैं। सरस्वती का सम्पादन मेरे कर्तव्य-कर्मों का एक अंश मात्र है। ऐसी अवस्था में मुझे इस विशेषांक का सम्पादन स्वीकार नहीं करना था। किंतु जब यह भार मेरे ऊपर आ पड़ा, तब उसका निर्वाह भी आवश्यक था। मैं जानता हूँ कि सम्पादन में अनेक त्रुटियाँ रह गयी हैं। किंतु मैं यह भी जानता हूँ कि हिंदी संसार और उदार सरस्वती के प्रेमी पाठक मेरी कमजोरियों और त्रुटियों पर अपनी सहृदयता के कारण विशेष ध्यान न देंगे। इस अंक की तैयारी में, विशेषकर प्रेस कापी तैयार करने में, मेरे मित्र श्री जगपति चतुर्वेदी ने मेरी बड़ी सहायता की है। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

यह स्पष्ट है कि बिना प्रेस के कर्मचारियों की सहायता के इतने विशालकाय ग्रंथ का इतने सुन्दर ढंग से छपकर, इतने कम समय में, तैयार होना असंभव था। छपाई विभाग के मैनेजर से लेकर ब्लाक बनानेवालों, प्रूफ देखनेवालों, फोरमैनों, प्रेसमैनों, कम्पोजिटरों, बँधाई करनेवालों तक ने इस कार्य को जिस तत्परता और प्रेम से किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। उन्होंने 'सरस्वती' की जयन्ती के इस अंग को सफल बनाने में जो हार्दिक सहयोग दिया है वह अत्यंत उत्साहवर्द्धक है। इसके लिए हीरक-जयन्ती समारोह-समिति, प्रकाशक और मैं इन सबके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं, और उन्हें उनके सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इस विशेषांक को स्वीकार कर 'सरस्वती' को जो गौरव प्रदान किया है वह उसके जीवन की अमूल्य निधि है।

**श्रीनारायण चतुर्वेदी**

इलाहाबाद
२०.१२.१९६१



# विषय-सूची

## कविता-खंड

❀ ❀ ❀

## कहानी-खंड

## लेख-खंड



# सरस्वती के सबसे पुराने लेखक राष्ट्रकवि गुप्तजी की शुभाशंसा

श्रीराम

हिन्दी ने आज जो उन्नति की है, उसमें पूज्य द्विवेदीजी का योग-दान अद्वितीय है। विशेषकर 'सरस्वती' के द्वारा ही उन्होंने यह कार्य किया है। इसका प्रकाशन प्रयाग के इंडियन प्रेस के स्वामी श्री चिन्तामणि घोष ने किया था। इसके बहिरंग का श्रेय उन्हीं को है, जिसके लिए हम हिन्दी-भाषी उनके भी कृतज्ञ हैं।

उस समय 'सरस्वती' ही एक ऐसी पत्रिका थी, जिसे भारत के सभी प्रान्तों में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के सम्पादन में जो परिश्रम किया, वह विस्मयजनक है। एक विशेष व्यक्ति ने मुझसे कहा था, ऐसा लगता है जैसे आदि से अन्त तक उसे एक ही व्यक्ति लिखता हो। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि उन्होंने अपने परिश्रम का फल लेखकों को ही अर्पण कर दिया और हिन्दी में नये नये लेखक उत्पन्न किये। यदि भारतेन्दु ने हिन्दी को नया जन्म दिया तो द्विवेदीजी ने उसका पालन-पोषण किया है।

उन्हीं का अनुग्रह था, जो कृतविद्यों के समाज का मेरे ऐसा अस्पृश्य भी इस मन्दिर में प्रवेश और प्रसाद पा सका।

मैथिलीशरण

नई दिल्ली,
५-१२-६७

# महाकवि निरालाजी का सरस्वती के प्रति आभार

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला पूर्वी बंगाल के महिषादल नामक स्थान में पैदा हुए थे जहाँ उनके पिता राज्य की सेवा में थे। वहीं उनकी बाल्यावस्था और किशोरावस्था बीती। जब उनका विवाह हुआ तब वे अपने पैतृक स्थान जिला रायबरेली में आये। उनकी पत्नी विदुषी थीं और उन्हें हिंदी की अच्छी शिक्षा मिली थी, किंतु निरालाजी उन दिनों बंगालियों की तरह टूटी फूटी हिंदी बोलते थे क्योंकि तब तक उन्होंने हिंदी का अध्ययन नहीं किया था। उन्होंने क्यों और कैसे हिंदी सीखी, और सरस्वती का उनकी हिंदी-शिक्षा में क्या हाथ रहा, यह उन्होंने अपनी पुस्तक––गीतिका––के समर्पण में लिखा है। यह समर्पण उन्होंने अपनी स्वर्गीया पत्नी को किया है। उनको लक्ष्य कर उन्होंने लिखा है––

**"जिसकी हिन्दी के प्रकाश से प्रथम परिचय के समय, मैं आँखें नहीं मिला सका––लजाकर हिंदी शिक्षा के संकल्प से कुछ दिनों बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हिन्दी-हीन प्रान्त में, बिना शिक्षक के 'सरस्वती' की प्रतियाँ लेकर, पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी,""""""**

हिन्दी सीखने में अमर कवि निराला की जो सेवा और सहायता सरस्वती ने की, यदि वही उसकी एक मात्र सेवा होती, तो भी वह उसके जन्म की सफलता की सार्थकता के लिए पर्याप्त थी।

# सरस्वती की कहानी

श्रीनारायण चतुर्वेदी

ईसा की उन्नीसवीं शती का अंतिम दशक था। महारानी विक्टोरिया के दीर्घकालीन शासनकाल का अंत निकट आ रहा था। अँगरेजों के प्रताप का सूर्य मध्याह्न की ऊँचाई पर पहुँचकर तमतमा रहा था। देश में शांति थी। किंतु 'नवाबी' के अत्याचारों और कष्टों की याद नहीं भूली थी, और ठगों तथा पिंडारियों के कारनामे भी विस्मृत नहीं हुए थे। रेल चलने लगी थी। डाकखानों के जाल सारे देश में फैल गये थे। इनके कारण देश में आवागमन तथा विचार-विनिमय सरल हो गया था। उत्तर भारत में लीथो की छपाई पुरानी पड़ गयी थी और टाइप की छपाई चल निकली थी। कलकत्ता, बम्बई आदि में पाश्चात्य शिक्षा और पाश्चात्य विचारों की धूम पहले से ही थी। इन नगरों में देशी भाषाओं में नवीन साहित्य का निर्माण आरंभ हो गया था। सारे देश में एक बौद्धिक चेतना उत्पन्न हो गयी थी तथा जनजागरण के प्रारंभिक लक्षण स्पष्ट रूप से दीखने लगे थे।

राष्ट्र के इस जागरण का प्रभाव समुद्रतटीय केन्द्रों से दूर स्थित हिंदी-भाषी क्षेत्रों और हिंदी-भाषियों पर भी पड़ा। अवश्य ही उन लोगों की अपेक्षा कुछ देर से पड़ा जो अँगरेजों और पाश्चात्य विचारों और साधनों से पहले परिचित हो गये थे। कलकत्ते में रहनेवाले हिंदीभाषी उनसे सर्वप्रथम प्रभावित हुए। साहित्य और भाषा के क्षेत्र में भी यह प्रभाव उन्हीं पर सबसे पहले पड़ा। यही कारण है कि हिंदी के पहिले समाचार-पत्र वहींसे प्रकाशित हुए। यद्यपि फोर्ट विलियम कालेज से हिंदी की पुस्तकें निकल चुकी थीं, तथापि कलकत्ते में हिंदी पुस्तक-प्रकाशन का कोई उल्लेखनीय संस्थान नहीं बन पाया। उन्नीसवीं शती के अंतिम दशक में बंबई में हिंदी-भाषी सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास का श्री वेंकटेश्वर प्रेस चल निकला था। वह संस्कृत-ग्रंथों, उनके हिंदी अनुवाद तथा हिंदी पुस्तकों का प्रकाशन कर रहा था तथा १८९७ में उसने श्रीवेंकटेश्वर-समाचार भी निकाला जो सौभाग्य से आज भी चल रहा है। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस उस समय का सर्वोत्तम हिंदी मुद्रक और प्रकाशक था। उस समय हिंदी के दो और प्रकाशक महत्त्वपूर्ण समझे जाते थे। इनमें एक बाँकीपुर (पटना) का खड्गविलास प्रेस, और दूसरा लखनऊ का नवलकिशोर प्रेस। खड्गविलास प्रेस विशुद्ध हिंदी का मुद्रक और प्रकाशक था। उसने भारतेंदु, अंबिकादत्त व्यास आदि की अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित कीं। हिंदी-साहित्य के विकास में उसका अमूल्य योगदान है। नवलकिशोर प्रेस में अरबी, फारसी और उर्दू के प्रकाशनों पर अधिक बल दिया जाता था क्योंकि उन दिनों अवध तथा उत्तर-पश्चिम भारत में इन्हींका बोलबाला था। किंतु मुंशी नवलकिशोर बड़े धार्मिक वृत्ति के हिंदू थे। उन्होंने अपने छापेखाने से संस्कृत और हिंदी के कितने ही धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथ भी प्रकाशित किये। इनमें से कई का—जैसे शिवसिंह सरोज, राजा लक्ष्मणसिंह के रघुवंश का गद्यानुवाद, तुलसीदासजी के ग्रंथ, सूरसागर आदि का तो आज ऐतिहासिक महत्त्व है। काशी में लाजरस प्रेस भी हिंदी की बहुमूल्य सेवाएँ कर रहा था, तथा छोटे-मोटे कई प्रकाशन संस्थान आरंभ हो गये थे जिनमें विशेष उल्लेखनीय काशी का भारतजीवन प्रेस था।

हिंदी-पत्रकारिता की अवस्था उन दिनों बड़ी विचित्र थी। लोगों में उत्साह था, साहित्य-सृजन की प्रेरणा थी, देशभक्ति और हिंदी-सेवा की उमंग और प्रवृत्ति भी थी, किंतु राज्य या जनता से सक्रिय सहायता नहीं मिलती थी। अँगरेज सरकार देशी भाषाओं की ओर से उदासीन थी। उसका झुकाव उर्दू की ओर था। उर्दू का इतना प्रचार और प्रभाव था कि पढ़े-लिखे लोग उर्दू को शिक्षा का आवश्यक अंग समझते थे। सरकारी सेवा के लिए या अदालती कार्य के लिए उर्दू का ज्ञान नितान्त आवश्यक था। सद्यःमृत नवाबी और बादशाही की परम्पराओं में डूबे हुए राजा-रईसों तथा आभिजात्य वर्ग में उर्दू 'शायस्ता', और हिंदी या नागरी 'गँवारू' भाषा समझी जाती थी। हिंदी का पठन-पाठन किसी-किसी जिले में तो नाममात्र को ही था। हमारे एक सहयोगी जो उत्तर प्रदेश में इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स के पद से सेवानिवृत्त हुए, बतलाते थे कि जब वे सेवा में आये तब, उनकी पहली नियुक्ति

मुरादाबाद जिले में सब-डिप्टी इन्स्पेक्टर के पद पर हुई। उनको जो परगना मिला उसके मिडिल स्कूलों में उस समय केवल दो विद्यार्थी ऐसे थे जो हिन्दी को प्रथम भाषा के रूप में पढ़ते थे। इस स्थिति का फल यह था कि हिंदी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं को ग्राहक नहीं मिलते थे। अतएव अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ दो-चार वर्ष निकलकर, और उत्साही प्रकाशकों के उत्साह को आर्थिक घाटे से समाप्तकर, बंद हो जाती थीं। भारतेंदुजी ने जो हिंदी चेतना उत्पन्न की तथा जिस हिंदी-आंदोलन को चलाया, और जिसे अयोध्यानरेश महाराज प्रतापसिंह, कालाकाँकर नरेश राजा रामपालसिंह, महामना मदनमोहन मालवीय आदि ने आगे बढ़ाया, उसने जनता में अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। भारतेन्दु-मंडल के सदस्य भी क्रियाशील थे। पं० अंबिकादत्त व्यास ने पीयूषप्रवाह और पं० प्रतापनारायण मिश्र ने ब्राह्मण निकाला। उन्होंने बड़ा काम किया, किंतु अधिक न चल सके। कलकत्ते से पं० देवीप्रसाद मिश्र ने धर्म-दिवाकर का प्रकाशन कई वर्षों तक किया। किंतु अंत में वह भी बंद हो गया। साप्ताहिक पत्रों ने अवश्य कुछ सफलता प्राप्त की। बंबई का श्री वेंकटेश्वर-समाचार अच्छा चल निकला और कलकत्ते का वंगवासी भी बड़ा लोकप्रिय हो गया। किंतु मासिक-पत्रों की दशा नहीं सुधरी।

सन् १८८४ ई० में इलाहाबाद में श्री चिंतामणि घोष ने इंडियन प्रेस की स्थापना की। उनकी महती अभिलाषा यह थी कि वे उत्तर भारत के सर्वश्रेष्ठ मुद्रक हो जायँ। अपने अध्यवसाय और सूझ-बूझ से थोड़े ही दिनों में वे सफल भी हो गये और यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि उस समय उत्तर भारत में इंडियन प्रेस के समान अच्छी छपाई करनेवाला कोई प्रेस नहीं था। अयोध्यानरेश ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'रस कुसुमाकर' इंडियन प्रेस में छपवाया, और शायद वह हिंदी का सर्वप्रथम सुमुद्रित ग्रंथ था। किंतु श्री चिंतामणि घोष मुद्रक थे, प्रकाशक नहीं थे। उनकी इच्छा प्रकाशक होने की नहीं थी।

किंतु एक घटना ने उन्हें प्रकाशनक्षेत्र में आने को विवश कर दिया। उस समय तक स्कूलों में जो भी पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं, वे प्रायः सब गवर्नमेंट प्रेस में छपती थीं। वे पाठ्यपुस्तकें वर्षों पहले तैयार की गयी थीं और उनमें से कितनी ही राजा शिवप्रसाद ने पचीस-तीस वर्ष पूर्व लिखी थीं। उत्तर-भारतेंदुकाल में हिंदी ने जो उन्नति की थी तथा भाषा में जो परिवर्तन हुए थे, उनका प्रभाव उन पाठ्यपुस्तकों पर नहीं था। इन पुस्तकों से कितने ही हिंदी प्रेमी असंतुष्ट थे, किंतु सरकारी पुस्तकों की होड़ में नयी पुस्तकें तैयार करने का साहस लोगों को नहीं होता था। उन दिनों इलाहाबाद में पं० दीनदयाल तिवारी नाम के एक डिप्टी इन्स्पेक्टर थे। उनकी मित्रता लाला सीताराम, उपनाम 'भूप' कवि से थी। दोनों ही अनन्य हिंदीप्रेमी थे। डिप्टी कलेक्टर होने से पहले लालाजी गवर्नमेंट स्कूलों में अध्यापक भी रह चुके थे। इन दोनों हिंदीप्रेमी शिक्षाविदों ने हिंदी की पाठ्यपुस्तकों का सुधार आवश्यक समझकर एक पाठ्य पुस्तमाला तैयार की। पुस्तकें तो तैयार हो गयीं, किंतु न तो उनके पास उन्हें छापने के लिए धन था, और न वे उन्हें प्रकाशित ही कर सकते थे क्योंकि वे सरकारी अधिकारी थे। गवर्नमेंट प्रेस की पुस्तकों की छपाई असंतोषजनक थी। उनमें कागज भी बहुत घटिया लगाया जाता था। लालाजी और तिवारीजी चाहते थे कि उनकी पुस्तकें अच्छे कागज पर, अच्छे चित्रों के साथ, बहुत बढ़िया छपें। स्वभावतया उनका ध्यान नगर के सर्वोत्तम प्रेस की ओर गया, और वे श्री चिंतामणि घोष से मिले। घोषबाबू ने कहा कि हम प्रकाशक नहीं, केवल मुद्रक हैं। अतएव आप प्रकाशन का प्रबंध कर लें, उन्हें छाप हम देंगे। किंतु लालाजी और तिवारीजी ने उन्हें इस कार्य के महत्त्व को बतलाकर, तथा प्रकाशनसंबंधी अपनी अड़चनें बतलाकर उन्हींसे उन्हें प्रकाशित करने का आग्रह किया। श्री चिंतामणि घोष केवल व्यवसायी ही नहीं थे। उनमें ऊँचे दर्जे की देशभक्ति और समाज के कल्याण की भावना भी थी। अंत में उन्होंने प्रकाशक न होते हुए भी, भावी पीढ़ी की शिक्षा के हित में, उनका प्रकाशन करना स्वीकार कर लिया। इन पाठ्य-पुस्तकों का नाम 'हिंदी शिक्षावली' था। पुरानी पाठ्य-पुस्तकों से यह कई गुना अच्छी थीं। छपाई-सफाई में तो सरकारी पुस्तकों की इनसे तुलना ही नहीं हो सकती थी। शिक्षा विभाग ने इन्हें स्वीकार कर लिया, और ये पुस्तकें खूब चलीं। केवल उत्तर प्रदेश ही में नहीं, अन्य प्रान्तों और रियासतों में उनकी माँग होने लगी, प्रकाशन का जो सिलसिला आरंभ हुआ तो फिर वह बढ़ता ही गया। इसी बीच घोष बाबू ने श्री रवींद्रनाथ टैगोर की बँगला पुस्तकें भी प्रकाशित कीं।

श्री चिंतामणि घोष बंगाली थे, किंतु उनका परिवार उत्तर प्रदेश में बस गया था। अतएव उन्हें इस प्रान्त और उसकी भाषा से प्रेम हो गया था। उस पीढ़ी में कितने ही बंगभाषी हिंदी के प्रेमी, समर्थक और उन्नायक थे। बिहार में श्री भूदेव मुकर्जी ने शिक्षा विभाग में हिंदी को स्थान दिलाकर जो उपकार किया, वह हिंदीभाषी सदैव कृतज्ञता से याद करेंगे। राजा राममोहनराय ने स्वामी दयानंद से कहा था कि आप अपना सत्यार्थप्रकाश हिंदी में लिखें। वे उसे मूलतः संस्कृत में लिखना चाहते थे। बाबू रामकाली चौधरी की हिंदी-सेवाएँ भी नहीं भुलाई जा सकतीं। श्री चिंतामणि घोष उन्हीं विशालहृदय भारतवासियों में थे, जिन्होंने मातृभाषा की सेवा के अतिरिक्त हिंदी की सेवा करना भी अपना कर्त्तव्य समझा।

श्री चिंतामणि घोष ने अनुभव किया कि हिंदी के उन्नयन के लिए एक अच्छे हिंदी मासिक-पत्र का प्रकाशन आवश्यक है। उन्होंने इसकी चर्चा अपने मित्र बाबू रामानंद चटर्जी से की। उन्होंने भी इसका अनुमोदन किया। वे किसी बात को आवश्यक या महत्त्वपूर्ण समझकर उसकी चर्चामात्र कर संतोष करनेवाले लोगों में नहीं थे। अतएव उन्होंने स्वयं एक हिंदी मासिक-पत्र निकालने का निश्चय किया। किंतु इसमें सबसे बड़ी कठिनाई उसके सम्पादन का प्रबंध था। वे स्वयं यह काम कर नहीं सकते थे, और उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिल नहीं रहा था जिस पर उन्हें भरोसा हो कि वह ठीक तरह से सम्पादन कर सकेगा। किंतु वे कठिनाइयों से हार माननेवाले नहीं थे। उन्होंने नागरी-प्रचारिणी-सभा से सम्पादनकार्य में सहायता देने को लिखा। इस संबंध में बाबू श्यामसुंदरदास ने अपनी आत्मकथा में लिखा है :

> "सन् १८९९ में इंडियन प्रेस के स्वामी बाबू चिंतामणि घोष ने नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्रस्ताव किया कि सभा एक सचित्र मासिक पत्रिका के सम्पादन का भार ले और उसे वे प्रकाशित करें। सभा ने इसका अनुमोदन किया पर संपादन का भार लेने में अपनी असमर्थता प्रकट की। अंत में यह निश्चय हुआ कि सभा एक संपादक-मंडल बना दे। सभा ने इसे स्वीकार किया और बाबू राधाकृष्णदास, बाबू कार्तिकप्रसाद, बाबू जगन्नाथदास, पंडित किशोरी-लाल गोस्वामी को तथा मुझे इस काम के लिए चुना।"

सभा में इस संबंध में जो कार्यवाही हुई, उसका अधिकृत और मनोरंजक विवरण डा० जगन्नाथ शर्मा ने अपने उस लेख में दिया है जो अन्यत्र प्रकाशित है। सारांश यह कि सभा ने यह पंचायती सम्पादक-मंडल बना दिया। पंचायती काम शायद ही कभी संतोषजनक होता हो। किंतु चिंतामणि बाबू को हिंदी मासिक-पत्र निकालने का इतना अधिक उत्साह था कि उन्होंने इस सम्पादक-मंडल को स्वीकार कर लिया। इस बात का पता नहीं लगता कि इस पत्रिका का नामकरण किसने किया। सभा ने किसी नाम का सुझाव नहीं दिया। चिंतामणि बाबू ने स्वयं या अपने मित्रों की सलाह से इस प्रस्तावित मासिक पत्रिका का नाम 'सरस्वती' रखा। सम्पादन का कार्य काशी में ही होता था और सारी लिखा-पढ़ी सम्पादक-मंडल की ओर से बाबू श्यामसुंदरदास ही किया करते थे। सम्पादनकार्य के व्यय के लिए प्रेस २० रुपया मासिक देता था जो डाक व्यय आदि में खर्च होता था। इसका हिसाब प्रतिमास प्रेस को भेज दिया जाता था।

सन् १८९९ सरस्वती के प्रकाशन की तैयारी में बीता। पहली जनवरी १९०० को सरस्वती की प्रथम संख्या प्रकाशित हुई। इसका आवरण इकरंगा था। यह इस विशेषांक के प्रथम खंड के आरंभ में पुनर्मुद्रित किया जा रहा है। इसके चारों कोनों पर हिंदी के चार प्रमुख रत्नों के छोटे रेखाचित्र दिये गये थे। आरंभ में आर्ट पेपर पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का चित्र था। सरस्वती की नीति और उद्देश्य के सम्बंध में प्रकाशक की ओर से यह महत्त्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित किया गया—

"परम कारुणिक सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की अशेष अनुकम्पा ही से ऐसा अनुपम अवसर आकर प्राप्त हुआ है कि आज हम लोग हिन्दी भाषा के रसिक जनों की सेवा में नये उत्साह से उत्साहित हो एक नवीन उपहार लेकर उपस्थित हुए हैं जिसका नाम

सरस्वती

है। भरतमुनि के इस महावाक्यानुसार कि "सरस्वती श्रुति महती न हीयताम्", अर्थात् सरस्वती ऐसी महती श्रुति है कि जिसका कभी नाश नहीं होता, यह निश्चय प्रतीत होता है कि यदि हिन्दी के सच्चे सहायक और उससे सच्ची सहानुभूति रखनेवाले सहृदय हितैषियों ने इसे

समुचित आदर और अनुरागपूर्वक ग्रहण कर यथोचित आश्रय दिया तो अवश्यमेव यह दीर्घजीविनी होकर निज-कर्त्तव्य-पालन से हिन्दी की समुज्वल कीर्त्ति को अचल और दिगन्तव्यापिनी तथा स्थायी करने में समर्थ होगी।

"यद्यपि हम लोग महाकवि कालिदास के कथनानुसार वामन होकर उत्तुंग-शाखास्थित महाफल के प्राप्त करने की अभिलाषा करते हुए जन समाज में हास्यास्पद होने का उपक्रम करते हैं, किन्तु तौ भी क्या हम लोगों की ऐसी चपलता, कि जिसके मूल में नये उद्योग, उत्साह, उपकारिता और कार्य-तत्परता की सुहावनी सुगन्धि सनी हुई है, उदार-चरित रसज्ञों और समदर्शी सहयोगियों के क्षमा करने, सराहने और उत्तेजना देने योग्य न समझी जायगी? तो फिर हिन्दी के उत्साहियों, हितैषियों, उन्नायकों, रसज्ञों और सहयोगियों से ऐसी अखण्डनीय आशा क्यों न की जाय कि वे लोग सब प्रकार से अपनी बाहु-लता की शीतल छाया में इस नवीन बालिका को आश्रय देने में कदापि पराङमुख न होंगे, कि जिनके सन्मुख आज यह अपने नये रंग ढंग, नये वेशविन्यास, नये उद्योग उत्साह और नई मनोमोहिनी छटा से उपस्थित हुई है।

"इसके नव जीवन धारण करने का केवल यही मुख्य

**उद्देश्य**

है कि हिन्दी रसिकों के मनोरंजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती-भण्डार की अंगपुष्टि, वृद्धि और यथार्थ पूर्त्ति हो, तथा भाषा सुलेखकों की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भावभरित ग्रन्थराजि को प्रसव करै। और इस पत्रिका में कौन कौन से

**विषय**

रहैंगे, यह केवल इसीसे अनुमान करना चाहिये कि इसका नाम सरस्वती है। इसमें गद्य, पद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास, चम्पू, इतिहास, जीवन-चरित, पंच, हास्य, परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, शिल्प, कलाकौशल आदि साहित्य के यावतीय विषयों का यथावकाश समावेश रहेगा और आगत ग्रन्थादिकों की यथोचित समालोचना की जायगी। यह हमलोग निज मुख से नहीं कह सकते कि भाषा में यह पत्रिका अपने ढंग की प्रथम होगी; किन्तु हाँ, सहृदयों की समुचित सहायता और सहयोगियों की सच्ची सहानुभूति हुई तो अवश्य यह अपने कर्त्तव्य पालन में सफलमनोरथ होने का यथाशक्य उद्योग करने में शिथिलता न करेगी। इससे

**लाभ**

केवल यही सोचा गया है कि सुलेखकों की लेखनी स्फुरित हो जिससे हिन्दी की अंगपुष्टि और उन्नति हो। इसके अतिरिक्त हम लोगों का यह भी दृढ़ विचार है कि यदि इस पत्रिका सम्बन्धीय सब प्रकार का व्यय देकर कुछ भी लाभ हुआ तो इसके लेखकों की हम लोग उचित सेवा करने में किसी प्रकार की त्रुटि न करेंगे। आशा है कि हिन्दी पठित समाज इस पत्रिका पर कृपादृष्टि बनाये रहेंगे और हम लोगों को निज कर्त्तव्यपालन में यथाशक्ति पूर्ण सहायता देंगे।"

इससे स्पष्ट है कि सरस्वती का उद्देश्य बड़ा व्यापक था। वह संकुचित अर्थ में 'साहित्यिक' पत्रिका नहीं थी। हिंदी के सभी अंगों को पुष्ट करके पाठकों में साहित्यिक अभिरुचि उत्पन्न करने के साथ ही उन्हें आधुनिक और प्राचीन ज्ञान-विज्ञान संबंधी लेख देकर ज्ञानवर्द्धन करना उसका उद्देश्य था। बीच में एक-दो बार सरस्वती को समयोपयोगी बनाने के लिए उसकी नीति में परिवर्तन अवश्य हुए, किंतु वे अल्पकालीन ही हुए। सरस्वती अपने संस्थापक के उद्देश्यों की पूर्ति को ही अब तक अपनी नीति बनाये हुए है।

सभा का सम्पादक-मंडल सम्पादन के लिए उत्तरदायी था और सरस्वती की यह नीति उसकी सहमति से ही निर्धारित की गयी थी। उसने इसका कितने मनोयोग से पालन किया, यह प्रथम वर्ष में प्रकाशित लेखों से स्पष्ट हो जाता है। उस वर्ष ५६ लेख प्रकाशित हुए। उनका ब्यौरा इस प्रकार है:

**१—यात्रा, भूगोल, स्थान वर्णन—**

काश्मीर यात्रा, रेस्ट नगर का देव मंदिर, डा० नानसेन का उत्तरी ध्रुव का भ्रमण।

**२—भाषा-साहित्य—**

नागरी अक्षर का प्रचार, महाकवि भारवि, हम्मीर हठ, नैषध चरित-चर्चा और सुदर्शन, पं० श्रीधर पाठक की कविता, हिंदी-काव्य।

**३—इतिहास पुरातत्त्व—**

भारतवर्ष की पुरानी इमारतें, लंका का आविष्कार, कोहनूर, दामोदरराव की आत्मकहानी, पिट (हीरा)।

४—कहानियाँ—

इंदुमती, चंद्रलोक की यात्रा (वैज्ञानिक कहानी), आपत्तियों का पर्वत।

५—जीवन-चरित—

भारतेंदु हरिश्चन्द्र, अर्जुन मिश्र, शिवप्रसाद सितारेहिंद, अप्पय दीक्षित, लार्ड कर्जन, मौलवी सैयदअली बिलग्रामी, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, सर सैयद अहमद खाँ, जमशेदजी नसरवानजी ताता, प्रोफेसर फ्रेडरिक मेक्समूलर, राजा लक्ष्मणसिंह, सरदार दयालसिंह मजीठिया।

६—विज्ञान, विदेशी साहित्य और विविध—

सिम्बेलिन, प्रकृति की विचित्रता, फोटोग्राफी एथेंसवासी टाइमन, जंतुओं की सृष्टि, पेरिक्लिस, रेलगाड़ी, कौतुकमय मिलन, एक साधारण प्रश्न, मानवी शरीर, भारतवर्ष की शिल्पविद्या।

७—कविताएँ—

छप्पन की बिदाई, नये वर्ष की बधाई, (विम्बार्द्ध) बसंत, चंद्रोदय, प्रेमोपहार,* रामजानकी, किरातार्जुनीय, मलयानिल,* प्रेमप्रतिमा,* सावित्री प्रबोधन, भ्रमराष्टक (अनुवाद), हे प्रिय, चंद्रोदय (पूर्ण विम्बा-रक्ताभा), पूर्व चातकाष्टक, द्रौपदी वचन बाणावली* उत्तर चातकाष्टक।

खड़ी बोली। शेष व्रजभाषा।

*इस सूची से स्पष्ट है कि सम्पादक-मंडल का दृष्टिकोण कितना व्यापक और विशाल था। हिंदी में कभी क्षेत्रीय या साम्प्रदायिक संकुचित दृष्टिकोण से काम नहीं लिया गया। प्रथम वर्ष में ही जो जीवन-चरित प्रकाशित हुए उनमें हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिख, अँगरेज सभी थे। उत्तर प्रदेश के ही नहीं, भारत के अन्य महान् पुरुषों का परिचय दिया गया था। साहित्यिक, राजनीतिज्ञ, संस्कृतज्ञ, उद्योगपति, समाजसेवी—सभी वर्गों के महान् पुरुषों का परिचय कराया गया। यदि प्राचीन अप्पय दीक्षित की चर्चा की गयी तो आधुनिक भंडारकर का भी गुणगान किया गया। इस प्रकार आरंभ ही से सरस्वती का दृष्टिकोण अखिल भारतीय बनाने का प्रयत्न किया गया क्योंकि हिंदी का दृष्टिकोण ही ऐसा है। सरस्वती की नीति तब से सदैव यही रही।

विषयों की विविधता से स्पष्ट है कि सरस्वती के संस्थापक और सम्पादक सरस्वती को ज्ञानवर्द्धक साहित्यिक पत्रिका बनाना चाहते थे। वे प्राचीन और अर्वाचीन पर समान बल देते थे। एक ओर संस्कृत के महाकवि भारवि और प्राचीन एथेंस के वाग्मी पैरिक्लीज पर लेख थे, तो दूसरी ओर डा० नानसन की उत्तरी ध्रुव यात्रा का वर्णन भी था। फोटोग्राफी, रेलगाड़ी और जंतुओं की सृष्टि पर लेख थे तो साथ ही भारतवर्ष की पुरानी इमारतों, लंका, नागरी अक्षरों आदि पर ज्ञानवर्द्धक निबंध दिये गये थे। किंतु उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग साहित्यिक लेखों का था। 'हम्मीरहठ' और 'पं० श्रीधर पाठक की कविता' आधुनिक प्रणाली की समालोचना के हिंदी-पत्रों में पहले लेख थे। इसी प्रकार हिंदी में गम्भीर साहित्यिक विवाद का श्रीगणेश 'नैषधचरित-चर्चा और सुदर्शन' से होता है। प्रसिद्ध विद्वान् और अपने समय के शीर्ष-लेखक पं० माधवप्रसाद मिश्र 'सुदर्शन' के सम्पादक थे। नैषधचरित की उन्होंने समालोचना की थी। उसीका यह उत्तर था। कहानी-साहित्य का एक प्रकार है। तब तक हिंदी में बहुत कम कहानियाँ लिखी जाती थीं, और जो लिखी भी जाती थीं वे पुराने ढंग के किस्सों की तरह होती थीं। सरस्वती की पहली कहानी इंदुमती है जो पहली आधुनिक हिंदी-कहानी मानी जाती है। 'चंद्रलोक की यात्रा' एक अँगरेजी कहानी पर आधारित है, किंतु इसका महत्त्व यह है कि यह पहली वैज्ञानिक कहानी है जो हिंदी में प्रकाशित हुई। कविताओं से तत्कालीन रुचि का पता लगता है। अधिकांश कविताएँ प्रकृति से संबंधित हैं। कुछ संस्कृत कविताओं के अनुवाद हैं। किंतु उस व्रजभाषा के युग में भी सरस्वती ने प्रथम वर्ष ही में खड़ी बोली में तीन-चार कविताएँ प्रकाशित कीं, और आश्चर्य की बात तो यह है कि सरस्वती में पहली खड़ी बोली की कविता व्रजभाषा के कवि, पं० किशोरीलाल गोस्वामी की लिखी हुई थी। दूसरी खड़ी बोली की कविता पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की है। अतएव कविता के क्षेत्र में प्रथम वर्ष से ही सरस्वती ने खड़ी बोली की कविता को—जब कविता में व्रजभाषा ही की प्रधानता थी—प्रोत्साहन देना आरंभ किया। उन दिनों पत्रों में खड़ी बोली की कविता यदाकदा ही छपती थी।

प्रथम वर्ष के लेखों का विश्लेषण कुछ विस्तार से किया गया है। इसका कारण सरस्वती के उद्देश्यों और

नीति को स्पष्ट करना है। यह भी कह देना आवश्यक है कि नागरी लिपि और हिंदी का प्रचार और प्रसार भी आरंभ ही से सरस्वती का एक ध्येय रहा है। नागरी-अक्षरों पर एक विद्वत्तापूर्ण लेख तो उसने प्रथम-वर्ष में ही प्रकाशित किया। भारतेंदु, राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के जीवन-चरित्रों को प्रकाशित कर हिंदी-आंदोलन के प्रमुख व्यक्तियों और साहित्य-निर्माताओं के चरित्र-वर्णन द्वारा, प्रकारांतर से, उसने हिंदी-आंदोलन की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया। जनवरी में सरस्वती का प्रकाशन आरंभ हुआ। संयोग से अप्रैल में उत्तर प्रदेश के छोटे लाट सर एंथनी मैकडॉनैल ने नागरी लिपि को कचहरियों में स्थान देने की घोषणा की। इस पर सरस्वती ने जो लेख लिखा उसका एक अंश यह है :

### पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध में

### नागरी अक्षर का प्रचार

"प्यारे हिन्दी के प्रेमियो! सर्व-शक्तिमान जगदीश्वर की पूर्ण कृपा से हिन्दी-हितैषी भारतवासी मात्र के लिए यह मास बड़े ही सौभाग्य का है, क्योंकि जिस अमृत फल के पाने की उत्कट कामना हमारे देश के लोग ६३ वर्ष से करते चले आते रहे और जिसके लिए कोई भी उद्योग उठा नहीं रक्खा गया था, उस अक्षय फल के पाने के आज हमलोग अधिकारी और योग्य समझे गए हैं। धन्य परमेश्वर! धन्य नागरी! धन्य पश्चिमोत्तर और अवध की न्याय-परायण गवर्नमेण्ट! धन्य लाट मेकडानल! धन्य नागरी-प्रचारिणी-सभा, और धन्य नागरी प्रचार के सहायक-वृन्द!!!

"अहा! आज हमारे आनन्द की सीमा नहीं है! इस उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में आज का दिन हमारे इतिहास में प्रलय पर्यन्त स्मरणीय बना रहेगा।

"यद्यपि जितनी हमलोगों की न्यायानुसार उचित प्रार्थना और इच्छा थी, उतने फल की प्राप्ति नहीं हुई, तथापि न्याय-परायण लाट मेकडानल की इतनी कृपा से ही हमारे उत्साह और आनन्द की सीमा नहीं है, क्योंकि नागरी के इस प्रकार के प्रचार से ही अनुमान हो सकता है कि अब हमलोग धीरे धीरे इस विषय में अधिक सफलता प्राप्त करने में सुगमता से समर्थ होंगे।

"किन्तु, हा! राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र!! आज तुम्हारी अविनाशी आत्माएँ कहाँ हैं? देखो तुम्हारे अनुगामियों ने बराबर तुम्हारे ही निर्धारित पथ पर चल कर उसमें कैसी सफलता प्राप्त की है कि जिसके लिए तुमने प्राणान्त तक तन मन और धन से कोई उद्योग उठा न रक्खा था। हमको पूर्ण आशा है कि आज तुम्हारी लोकान्तरित अविनाशी आत्मा भी इस (नागरी) की सफलता के समाचार को सुन अतिशय गदगद हो कर सन्तुष्ट हो गई होंगी॥

"प्यारे हिन्दी रसिको! दो वर्षों से तुम्हारे आकुल नेत्र इस बात की बाट जोह रहे थे कि कब पश्चिमोत्तर और अवध प्रदेश में हिन्दी के प्रचार की आज्ञा होती है; आज उस चिरवांछित आज्ञा को देख कर तुम्हारे उत्कण्ठित नेत्र आनन्दाम्बु से पूरित हो जायंगे। आज वह आज्ञा हमारे सन्मुख उपस्थित है, देखिए! पर इस आज्ञा के पाने ही मात्र से संतुष्ट होकर बैठ रहने से हमारा काम नहीं चलेगा। क्योंकि अब तक तो हमें कार्य करने का अधिकार ही नहीं मिला था; किन्तु अब वह आज्ञा मिल गई है, इसलिए अब हमलोगों को उचित है कि यह कर दिखावें कि वास्तव में हमलोग अपनी भाषा और अपने देश के कहाँ तक प्रेमी होने के अधिकारी हैं और इसके लिए हम कहाँ तक अपने कर्त्तव्य के करने में कृतकार्य और सफल मनोरथ हो सकते हैं!

"आज हम अपने प्रेमी पाठकों के सन्मुख इस उद्योग के पूर्ण किन्तु संक्षिप्त इतिहास को उपस्थित करके उन महानुभावों की पूर्ण कृतज्ञता स्वीकार किया चाहते हैं, जिन्होंने इस महाव्रत में व्रती होकर एक असम्भावित कार्य को एक प्रकार से सम्भव कर दिखाया है।

"भारतवर्ष में मुसलमानों के आने (११००-१२०० ई०) के पहिले इस देश की देशभाषा हिन्दी और लिपि नागरी वा नागरी ही के रूपान्तर अक्षरों वाली थी। उसी के द्वारा देश के राजा और प्रजा सब का काम चलता था। मुसलमानी राज्य के प्रारम्भ (१२०० ई०) से लेकर अकबर के राज्य के मध्य (१५६५ ई०) तक माल विभाग में हिन्दी का और दीवानी तथा फौजदारी कचहरियों में फारसी भाषा का प्रचार था। यद्यपि यहाँ के रहने वाले फारसी को नहीं जानते थे, किन्तु मुसलमानों की मातृभाषा होने के कारण फारसी ही को श्रेष्ठता दी गई थी। फिर यहाँ पर

बृटिश राज्य के स्थापित (१७५७ ई०) होने पर कुछ काल तक इसी भाषा में काम चला। पर थोड़े दिन पीछे यह सोचा गया कि समस्त अदालतों और सरकारी दफ्तरों में अँगरेजी भाषा का प्रचार किया जाय। किन्तु यह प्रस्ताव बृटिश राज्य के नायकों को अच्छा न लगा और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने अपने २९ सितम्बर, सन् १८३० ई०, के आज्ञा-पत्र में यह स्पष्ट कह दिया कि "यहाँ के वासियों को जज की भाषा सीखने के बदले जज को भारतवासियों की भाषा सीखना बहुत सुगम होगा। अतएव हमलोगों की सम्मति है कि न्यायालयों की समस्त कार्रवाई उस स्थान की भाषा में हो।" परन्तु इस आज्ञा का पालन सन् १८३७ ई० के पूर्व तक नहीं हुआ था। परन्तु इस (सन् १८३७ ई०) वर्ष में गवर्नमेण्ट ने यह सोचकर कि विदेशी भाषा और लिपि के प्रचार से अदालतों का काम ठीक ठीक और उत्तम रीति से न चल सकैगा और लोगों को न्याय प्राप्त करने में कठिनता होगी, कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की सम्मति के अनुसार यह निश्चय किया कि "न्याय और माल सम्बन्धी समस्त काम फारसी के बदले यहाँ की देशभाषा में हुआ करैं और अँगरेजी का प्रचार केवल ऐसी चिट्ठी पत्री में सरकारी अफसर किया करैं जिससे सर्वसाधारण से कोई सम्बन्ध न हो।" इस निश्चय के अनुसार बंगाल में बंगला और उड़ीसा में उड़िया भाषा का प्रचार हुआ। किन्तु हिन्दुस्तान (जिसके अन्तर्गत बिहार, पश्चिमोत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश का कुछ भाग है) की भाषा हिन्दी है, जो कि नागरी लिपि वा उसके अन्य रूप में लिखी जाती है। पर इसके बदले में इन प्रान्तों की कचहरियों में उर्दू भाषा का प्रचार हुआ। इसका कारण यह हुआ कि कुछ यूरोपीय लेखकों ने बिना जाने-बूझे इस उर्दू भाषा का 'हिन्दुस्तानी' नाम से उल्लेख किया था; जिससे यह समझा गया कि जैसे बंगाल की भाषा बंगला, और गुजरात की भाषा गुजराती है, वैसे ही हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दुस्तानी (उर्दू) है। इस महाभूल का संशोधन सन् १८८१ ई० में बिहार में हुआ, जब से कि वहाँ नागरी वा कैथी अक्षरों का प्रचार है। उसी वर्ष मध्यप्रदेश में भी यह भूल सुधारी गई और वहाँ भी हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों का प्रचार हुआ। परन्तु पश्चिमोत्तर और अवध प्रान्त में इस सुधार का होना अब तक रह गया था, जिसके सुधरने का आज समय आया।

"इस स्थान पर अब अधिक इस बात का प्रमाण देना कि इन (पश्चिमोत्तर और अवध) प्रान्तों की भाषा हिन्दी है, विशेष आवश्यक नहीं है; क्योंकि यह बात सर्व-वादि-सम्मत होकर पूर्ण रीति से प्रमाणित हो चुकी है और इसे अब राजा और प्रजा दोनों ही ने हृदय से स्वीकार कर लिया है। परन्तु अब इस बात को भली भांति से समझ लेना चाहिये कि सन् १८३७ ई० में जो आज्ञा निकली थी, वह केवल भाषा ही के विषय में थी। इस समय यह नहीं विचारा गया था और न इसके विषय में कुछ निर्णय हुआ था कि वह "हिन्दुस्तानी" फारसी अक्षरों में लिखी जायगी, वा नागरी में।

"उस समय सदर दीवानी अदालत ने तो इस भ्रम में पड़कर कि उर्दू यहाँ की देश भाषा है, फारसी के स्थान पर उस (उर्दू) के प्रचार की आज्ञा दी। अतएव बिना सोचे विचारे "उर्दू" को "हिन्दुस्तानी भाषा" यह नाम दिया गया और यह स्पष्टरूप से कह दिया गया कि कचहरियों की कार्रवाई और वकीलों की बहस साधारण और सरल उर्दू में वा हिन्दी में जहाँ पर कि इस का प्रचार हो, लिखी जाय। यह भाषा ऐसी होनी चाहिये कि जिसका प्रयोग एक साधारण कुलीन भारतवासी जो कि फारसी नाममात्र को भी न जानता हो, अपनी साधारण बात चीत में कर सकता हो। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस समय यह आज्ञा दी गई थी उस समय सदर दीवानी अदालत की यही इच्छा थी कि कचहरियों की कार्रवाई ऐसी भाषा में लिखी जाय कि जिसे सर्वसाधारण सुगमता से समझ सकैं। हिन्दी के विषय में जो आज्ञा दी गई उस ओर कुछ भी ध्यान नहीं गया। बहुत दिनों तक फारसी से भरी हुई उर्दू लिखते चले आने के कारण अमलों को जनसाधारण की भाषा को उन्हीं की लिपि (नागरी) में लिखने से घृणा हुई और इसीसे इस प्रान्त की कचहरियों में उर्दू भाषा और फारसी अक्षरों का प्रचार हुआ।

"इस आज्ञा का फल अत्यन्त ही असन्तोषदायक हुआ, क्योंकि इसके तीन ही वर्ष के उपरान्त (सन् १८४० ई०) बोर्ड आफ् रेवेन्यू को फिर से आज्ञापत्र निकालना पड़ा और उसमें फिर इस बात पर जोर देना पड़ा कि "फारसी पूरित उर्दू न लिखी जाय; वरन् ऐसी सरल भाषा लिखी जाय जैसी कि एक कुलीन हिन्दुस्तानी फारसी से अनजान रहने पर भी बोलता हो।" परन्तु इस २८ अगस्त सन् १८४० ई० की आज्ञा का भी कोई परिणाम न हुआ, यहाँ तक कि इसके पन्द्रह वर्ष के उपरान्त गवर्नमेण्ट ने देखा कि दीवानी फौजदारी और कलक्टरी (माल) कचहरियों की कार्रवाई अभी तक एक कठिन और विदेशी भाषा में लिखी जाती है जिसका

भेद फारसी से बहुत थोड़ा है। अतएव सदर दीवानी अदालत और बोर्ड आफ् रेवेन्यू की सम्मति लेने के उपरान्त गवर्नमेण्ट ने यह फिर से आवश्यक समझा कि कचहरी के अफसरों को इस बात की फिर से ताकीद की जाय कि सरकारी कागज़ ऐसी भाषा में लिखे जायँ कि जिन्हें सर्वसाधारण भली भांति से समझ सकें। इस सिद्धान्त के अनुसार ता० ९ मई, सन् १८५४ ई०, को एक आज्ञापत्र इसी आशय का निकाला गया। परन्तु इसका भी कुछ प्रभाव न हुआ। फिर गवर्नमेण्ट को निरुपाय होकर सन् १८७६ ई० में एक आज्ञापत्र सब जिले के हाकिमों के नाम निकालना पड़ा और भाषा की सरलता पर और भी स्पष्टरूप से जोर दिया गया। पर इसका भी कुछ परिणाम न हुआ। आज इस आज्ञा को बार बार निकलते चौंतीस वर्ष हो चुके और फिर भी अभी तक कचहरियों की भाषा की वही दुरवस्था है जोकि आज से ६३ वर्ष पहिले थी, जब कि पहिले पहिल गवर्नमेण्ट ने सन् १८३७ ई० में ऐसी साधारण और सरल भाषा के प्रचार की इच्छा प्रगट की थी, कि जिसे सर्वसाधारण सुगमतापूर्वक समझ सकें। परन्तु इन सब आज्ञाओं का कुछ भी फल न हुआ और कचहरियों की भाषा वैसी ही बनी रही। इस लिये पहिले पहिल सन् १८६८ ई० में प्रजा की ओर से इस बात का उद्योग किया गया था कि इन प्रान्तों की राज्यभाषा परिवर्त्तित हो। पर इस उद्योग का कुछ भी संतोषदायक फल न फला। फिर सन् १८८२ ई० में, जब कि एजुकेशन कमिशन बैठा था, इसका पुनः उद्योग किया गया। स्थान स्थान पर बड़ी बड़ी सभाएँ की गईं और बड़े बड़े आवेदन पत्र भी गवर्नमेण्ट की सेवा में अर्पण किए गए। पर इन सब उद्योगों का परिणाम भी आकाश-कुसुम की भांति शेष रह गया। इस प्रकार से दो बार विफल-मनोरथ होने के कारण यद्यपि यहाँ की दीन प्रजा एक प्रकार से निराश हो गई थी, कि अब हिन्दी का प्रचार होना असम्भव है, पर फिर भी अपने उचित और न्यायानुकूल स्वत्व के प्राप्त की बलवती इच्छा से बलवती हो उद्योग करने में आगे पैर बढ़ाती ही चली आई।

"यद्यपि अनेक बार के उद्योग-मार्ग में नैराश्य का घोर अन्धकार पूर्ण रूप से फैल रहा था, और इस पथ के पथिकजन एक प्रकार से थक और आगे के मार्ग को अंधकाराच्छन्न देखकर उत्साहहीन हो मौन साध कर बीच ही में बैठ रहे थे, कि अपने नए उत्साह और नए उद्योग-रूपी विद्युत्-प्रकाश से उस तिमिर को क्रमशः छिन्न-भिन्न कर बिचारे उत्साहहीन पथिकों के भविष्यत् मार्ग को प्रदर्शित करने की आकांक्षा से काशी धाम में एक सभा का जन्म हुआ। प्रारम्भ में लोगों को इसके ऊपर अनेक प्रकार के सन्देह हुए, पर क्रमशः अपने उद्योग में इसे तत्पर देख कर लोगों ने चारों ओर से इसकी सहायता प्रारम्भ की और नागरी-प्रचारिणी सभा भी धीरे धीरे निज उद्देश्य साधन में तत्पर हुई।

"पहिले पहिल सभा ने इस प्रान्त के बोर्ड आफ रेवेन्यू से निवेदन किया था कि "सन् १८८१ और १८७५ ई० के एक्ट नं० १२ और १९ के अनुसार सम्मन आदि हिन्दी और उर्दू दोनों (भाषा के अक्षरों) में भरे जाने चाहियें।" निदान इस विषय में सभा से और बोर्ड से पत्र व्यवहार हो ही रहा था कि इन प्रान्तों के सौभाग्य से न्याय-परायण श्रीमान् सर ऐन्टनी मेकडानल महोदय का सुशासन काल यहाँ प्रारम्भ हुआ।

"सन् १८९५ ई० के नवम्बर मास में, जबकि श्रीमान् काशी पधारे थे, उस समय सभा ने एक अभिनन्दन पत्र देकर प्रार्थना की थी कि "हिन्दी के उचित स्वत्वों पर भी विचार हो।" इस पर श्रीमान् ने विचार करने की प्रतिज्ञा की और सभा भी सर एन्टनी मेकडानल ऐसे न्यायपरायण, सत्यप्रिय, योग्य और दयावान सुशासक को पाकर श्रीमान् के सन्मुख हिन्दी की प्रार्थना को उपस्थित करने के उद्योग में व्रती हुई।

"थोड़े ही दिनों में अत्यन्त परिश्रम और पूर्ण उद्योग करने के उपरान्त ता० २ मार्च सन् १८९८ ई० बृहस्पतिवार को दिन के बारह बजे गवर्नमेण्ट हाउस इलाहाबाद में एक डेपुटेशन पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधबासी प्रजा की ओर से श्रीमान् सर एन्टनी मेकडानेल महोदय, जी० सी० एस० आई०, की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने सहस्रों हस्ताक्षर सहित निवेदन पत्र अर्पण किया।

"इस (आवेदन पत्र) में प्रार्थना की कि श्रीमान् इन प्रान्तों में न्याय और शिक्षा के प्रचार तथा उपकार के लिए सरकारी दफ्तरों और न्यायालयों में हिन्दी का प्रचार करें। इस पर श्रीमान् ने अन्य बातों के अतिरिक्त कहा कि——

"मेरा सिद्धान्त यह है कि यद्यपि मैं यह समझता हूँ कि हमारे सरकारी कागजों में नागरी अक्षरों के विशेष प्रचार से लाभ होगा और समय भी इस परिवर्त्तन के पक्ष में है, पर मैं

ऐसा कोई आवश्यक वा उचित कारण नहीं देखता कि क्यों हम लोग शीघ्रता करें।"

"अन्त में श्रीमान् ने पूरी जांच करके तब इस विषय में निज आज्ञा के देने की प्रतिज्ञा की। उस दिन से फिर तो निरन्तर अनेक स्थानों से आवेदन पत्र श्रीमान् की सेवा में गए और हिन्दी समाचार पत्रों ने भी नागरी के पक्ष में अच्छा जोर दिया।

"निदान दो वर्ष लों इस पर घोर आन्दोलन होता रहा। इस (नागरी के पक्ष वाले) आवेदन पत्र के विपक्ष में भी (फारसी लिपि के पक्षवालों द्वारा) आवेदन पत्र दिए गए। परन्तु हर्ष का विषय है कि जितनी प्रार्थनाएँ नागरी के पक्ष में थीं उन सभों में यही प्रार्थना थी कि केवल अक्षरों में परिवर्त्तन किया जाय; परन्तु जितने आवेदन पत्र विपक्ष में दिए गए थे, उनमें भाषा का झगड़ा उठाया गया था।

"निदान इन प्रार्थनाओं पर पूर्ण और योग्य विचार करके और बोर्ड आफ रेवेन्यू, हाई कोर्ट तथा जुडिशियल कमिश्नर अवध, से सम्मति लेकर श्रीमान् लाट साहब बहादुर ने इस विषय पर निज न्यायानुकूल आज्ञा को प्रकाशित किया है।

"प्यारे हिन्दी के प्रेमियो! इस उचित और न्यायसंगत आज्ञा के लिए हमलोग सर एन्टनी मेकडानल महोदय को जितना हार्दिक धन्यवाद दें सब थोड़ा है। वास्तव में यह सर एन्टनी ही ऐसे धीर वीर गम्भीर न्यायवान और उचित सम्मति देने में निश्शंक सुशासक का ही सत्कार्य था कि जिन्होंने इस आज्ञा को दे कर न्याय और स्वत्व की उचित मर्यादा की रक्षा की। यों तो कितने ही वर्षों से इस न्याय के प्राप्त करने के लिए इन प्रान्तों की आशावती प्रजा की ओर से उद्योग होता रहा, परन्तु इस उचित न्याय से अपने विमल यश को भारतवर्ष ही नहीं वरन् भूमण्डल में चिरस्थायी करना न्यायपरायण सर एन्टनी मेकडानल महोदय के ही भाग्य में था।

"इस स्थान पर नागरी हितैषिओं और इस नागरी प्रचार के महत् उद्योग में ब्रती महानुभावों में से पण्डित मदनमोहन मालवीय की कृतज्ञता स्वीकार किए बिना हम नहीं रह सकते।

"उपसंहार में हम निम्नलिखित महाशयों को भी असंख्य धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने नागरी की सफलता के उद्योग करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी थी। उनमें प्रथम काशी नागरीप्रचारिणी सभा के सुयोग्य मन्त्री बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०, हैं। दूसरे हिन्दी समाज में चिर-परिचित बाबू राधाकृष्ण दास हैं, और तीसरे विद्याविनोद (लखनऊ) के सम्पादक बाबू कृष्णबलदेव वर्म्मा हैं। इन्होंने नागरी मेमोरियल भेजने में नगर नगर में घूम घूम कर बड़ी सहायता की थी। इससे यह न समझना चाहिए कि और किसी ने इसमें उद्योग नहीं किया। इस उद्योग में इतने सहायक हुए हैं कि सबकी नामावली देने से एक वृहत-ग्रन्थ बन जाय। इस भय से और महानुभावों की नामावली नहीं प्रकाशित करते। समाचार पत्रों में भारतजीवन (काशी), हिन्दोस्थान (कालाकांकर) और श्रीवेंकटेश्वर समाचार (बंबई) भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। नागरी के हितैषियों को इन महानुभावों का हृदय से कृतज्ञ होना चाहिए।

सरस्वती के जन्म के चार महीने के भीतर ही उत्तर प्रदेश में हिंदी को यह पहिली सफलता मिली थी। सरस्वती ने जिस ढंग से, तत्कालीन शैली में, उसका वर्णन किया है उससे उसकी हिंदी संबंधी नीति का पता लगता है। हिंदी का यह आग्रह सरस्वती की नीति का स्थायी मूलाधार है।

सम्पादक-मंडल के सदस्यों से आशा नहीं की जा सकती थी कि वे समान रूप से कार्य करेंगे। बाबू श्यामसुंदरदास आये हुए लेखों को देखते और पत्र-व्यवहार करते थे। दूसरे लोग भी कुछ काम करते थे, पर यह कहना कठिन है कि वे कितना काम करते थे। कचहरियों में नागरी के प्रवेश पर जो एक प्रकार का सम्पादकीय लेख है उसमें पं० किशोरीलाल गोस्वामी की कलम बोल रही है। वैसे भी सम्पादक-मंडल के सदस्यों में प्रथम वर्ष में उन्हींके लेख सबसे अधिक हैं, और उनमें विषय-वैचित्र्य भी है। उन्होंने लेख भी लिखे और कविताएँ भी। यह इस तालिका से स्पष्ट होगा :

| | लेख | कविता |
|---|---|---|
| बाबू श्यामसुंदरदास | ३ लेख<br>३ जीवनी | |
| बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री | १ यात्रा<br>१ इतिहास | |
| बाबू राधाकृष्णदास | ४ लेख<br>२ जीवनी | २ कविताएँ |
| बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर | | १ कविता |
| पं० किशोरीलाल गोस्वामी | १ कहानी<br>३ लेख और ५ जीवनियाँ | ८ कविताएँ |

इससे स्पष्ट है कि प्रथम वर्ष में सम्पादक-मंडल के सदस्यों ने सबसे अधिक लेख लिखे। किंतु पंचायती काम में सदैव ढिलाई होती है क्योंकि एक समझता है कि दूसरे काम कर लेंगे। उधर चिंतामणि-बाबू समय के बड़े पक्के थे। वे पहिली तारीख को सरस्वती का निकाल देना प्रेस की प्रतिष्ठा का प्रश्न समझते थे। लेख भेजने और प्रूफ देखने का काम बाबू श्यामसुंदरदास करते थे। अतएव प्रथम वर्ष समाप्त होते-होते यह स्पष्ट हो गया कि सम्पादक-मंडल से काम न चलेगा। सम्पादन का उत्तरदायित्व एक व्यक्ति के ऊपर रहना चाहिए। अतएव जनवरी १९०१ से बाबू श्यामसुंदरदास उसके एकमात्र सम्पादक हो गये। उन्होंने सरस्वती की आरंभिक नीति के अनुसार ही उसका सम्पादन किया। किंतु यह कार्य अवैतनिक था। बाबूसाहब को इतना अवकाश नहीं था कि इस भार को बहुत दिनों तक चला सकते। अतएव उन्होंने १९०२ के अंत में इस भार से मुक्त होने के लिए लिख दिया। बाबू साहब ने अपनी आत्मकथा में लिखा है-- "मेरे अलग होने का कारण समय का अभाव और मेरी आर्थिक कृच्छ्ता थी।"

सम्पादन और प्रकाशित सामग्री के उच्च स्तर के होते हुए भी आरंभ में सरस्वती को हिंदी जगत् से उत्साहवर्द्धक समर्थन नहीं मिला। प्रकाशक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। श्री चिंतामणि घोष ने दिसंबर १९०० के अंक में 'प्रकाशक के निवेदन' में इसका विस्तृत वर्णन किया है। वह निवेदन इतना महत्वपूर्ण है। और उसमें तत्कालीन हिंदी समाज के मानसिकता का इतना सजीव वर्णन है कि हम उसे अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। पाठकों को श्री चिंतामणि घोष के आदर्श हिंदी प्रेम और विशाल दृष्टिकोण का भी पता लगेगा।

बाबू श्यामसुंदरदास का त्यागपत्र पाने पर बाबू चिंतामणि घोष ने बहुत सोच-विचारकर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी से सरस्वती का वैतनिक सम्पादक होने का प्रस्ताव किया। चिंतामणि बाबू से द्विवेदीजी का परिचय भी विचित्र प्रकार से हुआ। इंडियन प्रेस की एक पुस्तक स्कूलों के लिए स्वीकृत हो गयी थी। चितामणि बाबू को यह न मालूम था कि उसमें अनेक अशुद्धियाँ हैं। किसी प्रकार वह पुस्तक द्विवेदीजी की निगाह में आ गयी, और उन्होंने उसकी बड़ी कड़ी समालोचना शिक्षा विभाग को भेज दी, तथा उसकी एक प्रतिलिपि चितामणि बाबू को भी। द्विवेदीजी यह समझते थे कि अपनी चलती हुई पुस्तक की इतनी कड़ी आलोचना से चिंतामणि बाबू अप्रसन्न हो जायँगे। किंतु चिंतामणि बाबू दूसरी धातु के बने थे। उन्होंने आलोचना को पढ़ा और उसके औचित्य को समझा। वे अप्रसन्न होने के बदले द्विवेदीजी की तीक्ष्णबुद्धि, निर्भीकता और साहित्यिक पैठ से बड़े प्रभावित हो गये, और जब सरस्वती के सम्पादक की नियुक्ति का प्रश्न उनके सामने आया तो उन्होंने उसे स्वीकार करने के लिए उन्हें साग्रह निमंत्रित किया। द्विवेदीजी ने जनवरी १९०३ से सरस्वती का सम्पादन आरंभ किया।

प्रथम तीन वर्षों ही में सरस्वती ने हिंदी-संसार में अपना स्थान बना लिया था। उस समय वह हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाने लगी थी। उसकी छपाई-सफाई, चित्र और अलंकरण बेजोड़ थी। लेखों की विविधता और उपादेयता स्वीकार की जा चुकी थी। उस समय के उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकांश प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हिंदीलेखक उसके साथ सहयोग करने लगे थे। ऐसे समय द्विवेदीजी ने सरस्वती की कमान अपने हाथ में ली, और सन् १९२० तक (केवल दो वर्षों को छोड़कर जिनमें रुग्णता के कारण वे अवकाश पर रहे) वे उसके सम्पादक रहे। उनके सम्पादन में सरस्वती ने हिंदी पत्रकारिता-जगत् में ही नहीं, अपितु अहिंदी-क्षेत्रों में भी सम्मान प्राप्त किया, और वह हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाने लगी।

किंतु आरंभ में द्विवेदीजी को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वे स्वभाव के बड़े खरे थे। आरंभ में समवयस्कों के साथ उनका व्यवहार भी बहुत सरस नहीं था। वे स्पष्ट बात कहने में, या साहित्यिक दोष की आलोचना करने में कभी मुरव्वत नहीं करते थे। इसके साथ ही उनमें आत्माभिमान की मात्रा भी औसत से कुछ अधिक थी। इसलिए दूसरों के विरोध को वे बर्दाश्त भी बहुत कम कर सकते थे। उनमें गंभीरता की भी मात्रा अधिक थी। यह एक बड़ा गुण भी था, क्योंकि वे प्रत्येक उत्तरदायित्व को बड़ी गंम्भीरता से ग्रहण करते थे। किंतु उनके समवयस्क और समानश्रेणी के लोग उस गंभीरता का गलत अर्थ लगा लेते थे। परिणाम यह था कि वे अपने समवयस्कों में लोकप्रिय नहीं थे, और जब उन्होंने सम्पादन-कार्य लिया तब सरस्वती के पुराने लेखकों ने उसमें लेख भेजना प्रायः बंद कर दिया। द्विवेदीजी के सम्पादन

के पहले दो वर्षों में तो उन्हें अधिकांश लेख स्वयं लिखने पड़े। १९०३ में केवल १९ लेख दूसरे लोगों के लिखे हुए छपे, जबकि विविध विषय और पुस्तकसमीक्षा को छोड़कर द्विवेदीजी के ५५ लेख छपे हैं। किंतु इस वर्ष की २३ कविताओं में द्विवेदीजी की चार ही कविताएँ हैं। शेष १९ और लोगों की हैं।

इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि द्विवेदीजी ने अपने मित्रों (जैसे पं० गिरिजादत्त वाजपेयी, रायदेवीप्रसाद पूर्ण) जो पहिले सरस्वती में नहीं लिखते थे, सरस्वती में लेख और कविता लिखने को उत्साहित किया। किंतु वे इतने से ही संतुष्ट नहीं रहे। वे नये और होनहार साहित्यप्रेमी युवकों को हिंदी में लिखने को प्रोत्साहित करने लगे। वे उनसे लेख लिखवाते किंतु उनकी भाषा उनके मन की नहीं होती थी। इसलिए वे उसे प्रायः नये सिरे से लिख देते थे। कभी-कभी केवल लाल स्याही के प्रचुर प्रयोग से ही काम चल जाता था। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन और मार्गदर्शन से कितने ही नवयुवक हिंदी के प्रमुख लेखक और कवि हो गये। उनमें मनुष्य की साहित्यिक प्रतिभा की बड़ी परख थी, और जिसमें वे उसे देखते, उसे हर प्रकार प्रोत्साहित करते। उनके खुरदुरे बाह्य के भीतर अपार वात्सल्य था। अपनी कोई संतान न होने के कारण वह दबा पड़ा रहता था। वे मुक्तहृदय से उसे अपने शिष्यों पर उँडेल देते थे। यही कारण है कि जब उनके समवयस्क लोग उन्हें रूक्ष, क्रोधी और तुनुकमिज़ाज समझते थे तब उनकी मानवता और सरसता के भाजन उनके शिष्य, जिन्हें उनके चरित्र का यह पहलू देखने को मिलता था, उनकी सरसता से ओतप्रोत होकर उनके अनन्यभक्त और क्रीतदास हो जाते थे।

धीरे-धीरे द्विवेदीजी ने सरस्वती के लेखकों का एक मंडल बना लिया जिसमें विविध विषयों के विशेषज्ञ थे। किंतु वे नयी-नयी प्रतिभाओं की खोज में रहते, और प्रसिद्ध व्यक्तियों से सरस्वती में लिखने के लिए आग्रह करते। इसी अंक में प्रकाशित संत निहालसिंह के लेख से इसका उदाहरण मिलता है। कालान्तर में नये लेखक सरस्वती में अपना लेख छपाने की अभिलाषा करने लगे और सरस्वती का लेखक होना एक गौरव का विषय हो गया।

द्विवेदीजी के साहित्यिक विवादों ने तत्कालीन हिंदी-साहित्यिक जगत् में एक जीवन उत्पन्न कर दिया था। 'कालिदास की निरंकुशता', 'भाषा की अनस्थिरता' आदि ऐसे विवाद थे जिनसे साहित्यिकक्षेत्रों में चहल-पहल ही नहीं हुई, इनसे लोगों को साहित्यिक समस्याओं पर स्वतंत्र विचार करने तथा दोनों पक्षों के तर्कों का मूल्यांकन करने की भी आदत पड़ गयी। इन विवादों ने तत्कालीन साहित्यिकों में कुछ मनोमालिन्य भले ही उत्पन्न कर दिया हो, किंतु उनका स्थायी परिणाम बहुत शुभ हुआ।

भाषा का परिष्कार दूसरा क्षेत्र था जिसमें द्विवेदीजी की सरस्वती ने बड़ा काम किया। उनके पहले भाषा में एकरूपता नहीं थी। व्याकरण और अखरौटी के मामलों में बड़ी शिथिलता थी। द्विवेदीजी ने इसका कड़ाई से नियंत्रण किया। उनका प्रभाव ऐसा था, और सरस्वती की धाक इतनी थी कि उनके समर्थित रूपों का प्रचलन हिंदी में हो जाता था।

खड़ी बोली की पुष्टि इसी भाषा की एकरूपता का दूसरा पहलू था। सरस्वती ने धीरे-धीरे ब्रजभाषा के काव्य को छापना बंद कर दिया और खड़ी बोली की कविता को प्रोत्साहन देना आरंभ किया। सरस्वती के द्वारा आधुनिक खड़ी बोली की कविता को प्रतिष्ठा ही नहीं प्राप्त हुई, उसका आशातीत प्रचार भी हुआ। हिंदी के कितने कवियों ने, जो आज हमारे मूर्धन्य कवि माने जाते हैं, सरस्वती के प्रोत्साहन ही से अपनी काव्य-साधना में सफलता प्राप्त की। कविता के विषयों पर भी वे अच्छा नियंत्रण रखते थे। स्वयं आदर्शवादी और गंभीर प्रकृति के होने के कारण वे शृंगार अथवा हास्य-रस की कविताओं को सामान्यतः प्रश्रय नहीं देते थे। कविता में नवीनता के भी वे पक्षपाती थे। श्री सुमित्रानंदन पंत की आरंभिक कविताओं को उन्होंने प्रकाशित किया, यद्यपि उस समय वे नवीनधारा की समझी जाती थीं। किंतु शायद वे छायावाद के बहुत बड़े प्रशंसक नहीं थे, और जब मुक्तछंद की कविताएँ लिखी जाने लगीं तो वे उनके गले नहीं उतरीं। उन्होंने निरालाजी की 'जुही की कली' लौटा दी थी।

द्विवेदीजी इस बात के लिए उत्सुक रहते थे कि वे अपने पाठकों को संसार में होनेवाली नयी-नयी बातों से अवगत कराकर उनके ज्ञान को यथासंभव अद्यतन रखें। 'विविध विषय' शीर्षक के अंतर्गत वे अँगरेजी तथा दूसरी भारतीय भाषाओं के पत्रों में प्रकाशित लेखों से

प्राप्त जानकारी सरल शैली में पाठकों के लिए सुलभ कर देते थे।

किंतु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ होती थीं। वे टिप्पणियाँ विविध विषयों पर होती थीं, किंतु राजनीतिक विषयों पर वे कभी नहीं लिखते थे। सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, शिक्षा संबंधी विषयों पर उनकी टिप्पणियाँ ज्ञानवर्द्धक और विचारोत्तेजक होती थीं। नियमित रूप से इस प्रकार सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखना हिंदी मासिक-पत्रों में शायद सबसे पहिले सरस्वती ने ही आरंभ किया था। हिंदी की समस्याओं पर उनकी टिप्पणियाँ विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण होती थीं, क्योंकि वे सारे हिंदी-संसार के मत की प्रतिनिधि मानी जाती थीं।

हम कह चुके हैं कि द्विवेदीजी हर एक काम बड़ी गंभीरता से करते थे। आरंभ में सरस्वती में केवल ३६ पृष्ठ होते थे और वार्षिक मूल्य केवल ३ रुपया था। बाद में पृष्ठ-संख्या ४० कर दी गयी, किंतु मूल्य वही रहा। वह धीरे-धीरे बढ़ती गयी, और सन् १९१६ में एक अंक की पृष्ठ-संख्या बढ़कर ७२ पृष्ठ हो गयी। उसका वार्षिक मूल्य भी ४।।) रुपया कर दिया गया। इससे उनका कार्य-भार बढ़ता ही जाता था, और उनके कार्य करने तथा उत्तरदायित्व के मानक इतने ऊँचे थे कि लगातार पठन-पाठन और लेखन के कारण उन्हें उन्निद्र रोग हो गया। इससे दो बार उन्हें अवकाश लेना पड़ा। अंत में सन् १९२० में उनका स्वास्थ्य इतना गिर गया कि उन्होंने सम्पादन से निवृत्ति चाही। चिंतामणि बाबू द्विवेदीजी के बड़े प्रशंसक और मित्र थे। वे भी उनके स्वास्थ्य से चिंतित थे। अतएव उन्होंने उनको कार्यमुक्त करना स्वीकार कर लिया। किंतु वे उनकी वर्षों की सरस्वती की सेवा से इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने हिंदी-पत्रकारिता के इतिहास में एक अभूतपूर्व कार्य किया। द्विवेदीजी की पेंशन कर दी जो उन्हें सारे जीवन मिलती रही।

दूसरी स्वस्थ परम्परा जो सरस्वती के संस्थापकों ने डाली वह यह थी कि सम्पादन के कार्य में सम्पादक को पूर्ण स्वतंत्रता थी। प्रेस की ओर से द्विवेदीजी को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी, और उन्होंने अपने इस अधिकार का बड़े उत्तरदायी ढंग से उपयोग किया। ये दोनों ही परम्पराएँ सरस्वती की विशेषता हैं जो अभी तक जीवित हैं।

द्विवेदीजी के बाद सन् १९२१ में सरस्वती के सम्पादक श्री पुन्नालाल पदुमलाल बख्शी नियुक्त हुए, किंतु १९२५ के अंत में वे उसे छोड़कर चले गये। १९२६ में पं० देवीदत्त शुक्ल को यह भार सौंपा गया। शुक्लजी ने द्विवेदीजी के साथ रहकर सरस्वती के सम्पादन में सहायता की थी, और वे द्विवेदीजी की कार्यविधि और परम्पराओं से पूर्ण-रूप से परिचित थे। उन्होंने अपना कार्य बड़े सुचारु रूप से आरंभ किया। १९२७ में बख्शीजी लौट आये किंतु डेढ़ साल बाद फिर लौट गये और शुक्लजी पूर्ववत् सम्पादन करने लगे। द्विवेदीजी के समय में ही सहायक-सम्पादक पद की सृष्टि हो गयी थी। उनके समय में इस पद पर पं० उदय-नारायण वाजपेयी, पं० हरिभाऊ उपाध्याय (अजमेर के भूतपूर्व मुख्य मंत्री, राजस्थान के वर्तमान वित्त मंत्री) और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी रह चुके थे। शुक्लजी के समय में पं० ठाकुरप्रसाद मिश्र ने कई वर्षों तब उनकी सहायता की। पंडित शंभूनाथ शुक्ल (विंध्य प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री तथा मध्यप्रदेश के वर्तमान वन-मंत्री) भी कई वर्षों तक सरस्वती के सहायक रहे। उनके जाने के बाद बालसखा के सम्पादक ठाकुर श्रीनाथ-सिंह सरस्वती के संयुक्त सम्पादक बनाये गये। ठाकुर साहब को साहित्य के साथ साथ राजनीति में भी रुचि थी। तत्कालीन जनरल मैनेजर श्री हरिकेशव घोष को भी सरस्वती को अधिक उपयोगी और अधिक जनप्रिय बनाने का उत्साह था। अतएव सरस्वती में राजनीतिक लेख भी छपने लगे, और ठाकुर साहब के प्रयत्न से देश के अधिकांश हिंदीभाषी नेताओं ने सरस्वती में लेख लिखे। इस समय सरस्वती में प्रकाशित भाई परमानंद के एक लेख का उत्तर पं० जवाहरलाल नेहरू ने सरस्वती में दिया था। नेहरूजी के कई लेख सरस्वती में छपे। किंतु ठाकुर श्रीनाथसिंह सन् १९३५ में 'हल' के सम्पादक होकर चले गये और उनके स्थान पर पं० उमेशचंद्र मिश्र संयुक्त-सम्पादक बनाये गये। शुक्लजी ने सन् १९२५ से १९२७ तक, और फिर १९२९ से १९४६ तक लगातार सरस्वती का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया। किंतु १९४६ में उनकी आँखें खराब हो गयीं और प्रेस ने उन्हें पेंशन दे दी। उनके स्थान पर पं० उमेशचंद्र मिश्र सम्पादक नियुक्त हुए, किंतु कुछ ही समय बाद दुर्भाग्य से उनकी मृत्यु हो गयी। प्रेस ने बख्शीजी को फिर निमंत्रित किया और

पं० देवीदयाल चतुर्वेदी उनके सहायक नियुक्त हुए। बख्शी-जी फिर यह कार्य बहुत दिनों नहीं कर सके और यह कार्य-भार पं० देवीदयाल चतुर्वेदी जून १९५५ तक सम्हाले रहे।

सन् १९५० में श्री हरिकेशव घोष ने वर्तमान सम्पादक से सरस्वती का सम्पादन स्वीकार करने का आग्रह किया था। किंतु मध्य भारत में उनके शिक्षा संचालक के पद पर नियुक्त हो जाने के कारण बात जहाँ की तहाँ रह गयी। सन् १९५३ में उनकी असामयिक मृत्यु हो गयी। प्रेस के वर्तमान मैनेजर ने सन् १९५५ में (जब वर्तमान सम्पादक मध्य भारत से सेवा निवृत्त हुए) फिर प्रस्ताव किया, और इस बार वर्तमान सम्पादक ने अपनी स्वीकृति दे दी।

सन् १९२८ में सरस्वती के संस्थापक बाबू चितामणि घोष का स्वर्गवास हो गया। किंतु अंतिम वर्षों में प्रेस का सारा काम उनके द्वितीय पुत्र श्री हरिकेशव घोष देखने लगे थे। वे 'पटलबाबू' के नाम से प्रसिद्ध थे। वे सच्चे अर्थों में अपने पिता के उत्तराधिकारी थे। अपने पिता की तरह उनका हृदय विशाल और उदार था। उनमें प्रखर कल्पना-शक्ति थी। उनके परिश्रम को देखकर आश्चर्य होता था। हिंदी से उनका अकृत्रिम अनुराग था और सरस्वती को अधिक उन्नत करने की ओर उनका विशेष ध्यान था। उन्होंने उसे लोकप्रिय बनाने के कई प्रयोग किये। उनके समय में सरस्वती ने बड़ी उन्नति की। वे अपने पिता की परम्पराओं पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे और सरस्वती की परम्पराएँ अक्षुण्ण बनी रहीं। उनकी असामयिक मृत्यु सन् १९५३ में हो गयी, और तबसे प्रेस के जनरल मैनेजर उनके छोटे भाई श्री हरिप्रसन्न घोष हैं जो अपने पूज्य पिता और बड़े भाई के चरण-चिह्नों पर चलते हुए 'सरस्वती' का संचालन कुशलतापूर्वक कर रहे हैं।

सरस्वती इस बात में बड़ी भाग्यशाली रही है कि उसे सभी प्रकार के लेखकों का सहयोग सदैव प्राप्त हुआ है। पिछले साठ वर्षों में हिंदी का शायद ही कोई बड़ा लेखक हो जिसने सरस्वती में न लिखा हो। आरंभिक काल में तत्कालीन कुछ बड़े लेखकों का ध्यान सरस्वती की ओर नहीं गया क्योंकि उन्हें लिखने के लिए कलकत्ते के साप्ताहिक पत्रों से ही अवकाश नहीं मिलता था। उनमें से कुछ लोगों से द्विवेदीजी के साहित्यिक विवाद भी छिड़ गये थे। वे अपने उत्तर अन्यान्य पत्रों में छपाते थे। अतएव आरंभिक दशक के कुछ बड़े साहित्यिकों को सरस्वती में लिखने का अवसर नहीं मिला। उनमें बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं० माधवप्रसाद मिश्र, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पं० गोविंदनारायण मिश्र, पं० सकलनारायण पांडे, पं० राधाकृष्ण मिश्र प्रमुख हैं। किंतु इन थोड़े से लोगों को छोड़कर हिंदी के सभी लेखकों ने सरस्वती पर कृपा की। आरंभिक तीन वर्षों में काशी के साहित्यिकों ने विशेष सहयोग दिया, और बाद में तो सारे देश के विद्वानों और लेखकों की कृपा होती रही।

सरस्वती के पुराने अंकों के पन्नों को उलटने से पिछले साठ वर्षों के हिंदी संसार का चित्र मानस-पटल पर अंकित हो जाता है। भारतेंदु युग के ऐसे लेखक जैसे बाबू राधाकृष्णदास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी से आरंभ कर उन पन्नों में हम प्रत्येक दशक के प्रमुख लेखकों और साहित्यिक प्रवृत्तियों की झलक पा जाते हैं। खड़ी बोली में कविता का पूरा विकास सरस्वती के पुराने अंकों में देखा जा सकता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी, और रामचरित उपाध्याय की कविताओं से लेकर बा० मैथिलीशरण गुप्त के युग तक पहुँचने में बहुत कम देर लगती है। पं० नाथूरामशंकर शर्मा, राय देवीप्रसाद पूर्ण, सत्यशरण रतूड़ी, आदि कितने ही कवि सरस्वती द्वारा चमके। गुप्तजी ने खड़ी बोली की कविता को स्थायित्व दिया और उसे प्रतिष्ठा दी। उसे लोकप्रिय बनाने में गुप्तजी का जितना हाथ है, उतना शायद और किसीका नहीं है। और फिर छायावाद का उदय हुआ। पं० सुमित्रा-नंदन पंत ने सरस्वती के माध्यम से ही उसे हिंदी-जनता तक पहुँचाया। द्विवेदीजी के आरंभिक कालीन युग से लेकर खड़ीबोली की कविता ने तब तक जो उन्नति की थी वह मानो पंतजी की रससिक्त कोमलकांत पदावली में पुंजीभूत होकर सहसा विकसित हो गयी। और फिर सरस्वती ने जयशंकरप्रसाद, निराला और महादेवी की कविताओं को हिंदी संसार के पास पहुँचाया। प्रसादजी ने अपनी कामायनी के कुछ सर्ग, उस काव्य के प्रकाशन के पूर्व, सरस्वती में प्रकाशित किये थे। इसी प्रकार बच्चनजी की मधुशाला के आरंभिक अंशों का प्रथम प्रकाशन सरस्वती ही में हुआ। हिंदी संसार के प्रत्येक कोने के कवियों ने अपनी कविताओं से सरस्वती को अलंकृत किया। श्री सनेही, श्री हितैषी, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री रामधारीसिंह 'दिनकर', श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री प्रभाकर माचवे, श्री मोहनलाल महतो, श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद', श्री भगवतीचरण वर्मा आदि सभी कवियों की कविताएँ प्रकाशित करने का गौरव उसे प्राप्त है।

कहानियों के क्षेत्र में उसकी सेवाएँ अनुपम हैं। वास्तव

में आधुनिक हिंदी कहानी का जन्म ही सरस्वती में हुआ। पं० किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' सर्वसम्मति से हिंदी की पहली आधुनिक कहानी मानी जाती है। 'बंग-महिला' की कहानियों ने उस नूतन प्रवृत्ति को पुष्ट किया। बाबू वृंदावनलाल वर्मा की पहली कहानी सरस्वती में सन् १९०७ में छपी। पं० चंद्रधर गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती ही में प्रकाशित हुई थी। मुं० प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी छापने का सौभाग्य भी सरस्वती को प्राप्त हुआ था। उस युग में सरस्वती की कहानियों से अनुप्राणित होकर वे लोग भी जो कवि या गंभीर लेखक थे, कहानी लिखने का प्रयोग करने लगे थे। उदाहरण के लिए पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपनी (शायद एकमात्र) कहानी 'ग्यारह वर्ष बाद' और बालकृष्ण शर्मा ने 'संतू' नामक कहानी लिखी, और वे सरस्वती में प्रकाशित हुईं। फिर तो विश्वंभरनाथ कौशिक, सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा से लेकर भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, उषादेवी मित्र, अमृतलाल नागर आदि बीसों लेखक कहानी लिखने लगे और सरस्वती उनसे अलंकृत होने लगी। आधुनिक कहानी के विकास में सरस्वती की सेवाएँ अमूल्य और ऐतिहासिक हैं।

आरंभ ही से सरस्वती ने वैज्ञानिक कहानियों की ओर ध्यान दिया और कितनी ही वैज्ञानिक कहानियाँ प्रकाशित कीं।

हिंदी जनता को दूसरी भाषाओं की कहानियों से परिचित कराने के लिए सरस्वती ने अन्य भाषाओं की कहानियों के अनुवाद भी प्रकाशित किये। इस संबंध में एक ऐतिहासिक और मनोरंजक बात यह है कि रवींद्रबाबू की बँगला कहानियों का पहला अनुवाद हिंदी ही में हुआ, और वह सन् १९०२ में सरस्वती में छपा। तब तक रवींद्र बाबू की ख्याति बंगाल से बाहर न थी। उन्हें अपनी एक कहानी का हिंदी-अनुवाद देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी। अतएव भारतीय भाषाओं में सबसे पहले हिंदी में सरस्वती ने उनका अनुवाद प्रकाशित करके उनका आदर किया था।

आरंभ ही से सरस्वती सचित्र पत्रिका रही है। लेखों को स्पष्ट करने के लिए प्रचुरता से चित्र देने की नीति आरंभ ही से रही है। उनके अतिरिक्त महापुरुषों और स्थानों के चित्र आर्ट पेपर पर छापकर लगा दिये जाते थे। कई वर्षों तक ये इकरंगे ही होते थे। बाद में कलापूर्ण चित्रों का देना आरंभ किया गया। उस समय राजा रविवर्मा देश के सबसे प्रसिद्ध चित्रकार थे। बंगला शैली की कला उभड़ रही थी किंतु अच्छी तरह प्रकाश में नहीं आई थी। अतएव राजा रविवर्मा के चित्रों से ही कला-पूर्ण चित्रों का प्रकाशन आरंभ किया गया। बंबई आर्ट कालेज के वाइस-प्रिंसिपल श्री धुरंधर के चित्र भी प्रकाशित किये गये। सबसे पहले १९०२ में रविवर्मा के गंगावतरण का चित्र प्रकाशित हुआ। इस पर पं० किशोरी-लाल गोस्वामी की एक अत्यंत सुंदर कविता भी प्रकाशित की गयी थी। किंतु जब द्विवेदीजी ने सम्पादन-कार्य हाथ में लिया तब रविवर्मा के चित्र प्रायः नियमित रूप से प्रका-शित किये जाने लगे। वे उन पर कविताएँ भी लिखवा-कर प्रकाशित करते थे। इन कविताओं के लिखनेवाले अधिकतर पं० नाथूरामशंकर शर्मा, श्री देवीप्रसाद पूर्ण, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और स्वयं द्विवेदीजी थे। ये 'समस्यापूर्ति' कोटि की कविताएँ होती थीं, किंतु इनमें कोई कोई बहुत सफल, लोकप्रिय और प्रसिद्ध हुईं। केरल की तारा, रंभा शुक संवाद, गंगा और शांतनु, अज विलाप आदि कविताएँ जो उन नामों के चित्रों पर आधारित थीं, साहित्यिक महत्त्व पा गयीं। किंतु कुछ वर्षों तक ये कला-पूर्ण चित्र इकरंगे ही छपते थे। बाद में रंगीन चित्र भी छपने लगे। रविवर्मा का एक ही रंगीन चित्र (अज विलाप) छपा। कुछ कविताओं पर कलाकारों से चित्र बनवाकर प्रकाशित किये गये। 'रण निमंत्रण' और 'केशों की कथा' इसके उदाहरण हैं। बाद में बंगला कला शैली के चित्र और पुराने कलमी चित्र प्रकाशित किये जाने लगे। कांगड़ा, राजस्थानी, मुगल आदि शैलियों के कितने ही चित्र प्रका-शित हुए। बंगला कला शैली के कलाकारों में प्रायः सभी मूर्धन्य कलाकारों के चित्र प्रकाशित हुए, जैसे अवनींद्रनाथ टागोर, नंदलाल बोस, जामिनीमोहन राय, गगनेन्द्र नाथ टागोर, असित हालदार, सारदा उकील, बरोदा उकील आदि के। बंगला कला शैली के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र भी प्रकाशित किये जाने लगे जिनमें उल्लेखनीय चित्रकार गुजरात के श्री रविशंकर रावल और लाहौर के अब्दुर्रहमान चगताई हैं। इनके अतिरिक्त देश के अन्य कितने ही कलाकारों के चित्र प्रकाशित हुए। इस प्रकार सरस्वती ने हिंदीभाषी जनता को पिछली कई शतियों की चित्रकला के नमूनों से परिचित कराया।

सरस्वती को यह गर्व है कि उसने अजंता के चित्रों से लेकर, मध्यकाल की विभिन्न शैलियों तथा आधुनिककाल के राजा रविवर्मा और अवनींद्रनाथ टागोर से लेकर देवकृष्ण जोशी, सुधीर खास्तगीर और क्षितीश मजूमदार तक की कला का रसास्वादन कराकर पाठकों के सौंदर्यबोध की वृद्धि की।

सरस्वती हिंदी की प्रतिनिधि पत्रिका है, और उसने आरंभ ही से हिंदी भाषा और साहित्य के प्रसार और प्रचार का व्रत ले रखा है। शिव और लोकोपयोगी साहित्य का सृजन उसका लक्ष्य रहा है। भाषा की शुद्धता और सौष्ठव की वह पोषक रही है। इसलिए भाषा की समस्याओं पर उसने सदैव ध्यान दिया है। इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर उसने निर्भीक समालोचना का भी सहारा लिया है। हिंदी को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित कराने और उसे भारत की सार्वदेशिक भाषा स्वीकार कराने के लिए सरस्वती ने अपने जन्मकाल ही से प्रयत्न किया है। हिंदी के हितों और अधिकारों पर जो आघात हो रहे या होनेवाले हों, उनकी ओर हिंदी संसार का ध्यान दिलाना, और उनके पक्ष में बुद्धिसंगत तर्क देना उसका सतत् कार्य रहा है। वह देश के व्यापक हित में हिंदी का प्रसार और प्रचार आवश्यक समझती रही है। उसका विश्वास है कि जिस प्रकार इस विशाल देश के भिन्न-भिन्न लोगों को संस्कृत ने एक सूत्र में बाँधकर भारतीय संस्कृति की एकता स्थापित की थी, उसी प्रकार इस आधुनिक युग में इस महान् देश को भाषा की एकसूत्रता में बाँधना हिंदी का पुनीत और ईश्वर द्वारा निर्धारित कर्त्तव्य है। हिंदी जाननेवाले देशवासियों के लिए ज्ञान-विज्ञान की शिष्ट और सुरुचिपूर्ण साहित्यिक सामग्री प्रस्तुत कर देश का बौद्धिक स्तर उठाना तथा हिंदी की सर्वांगीण सेवा करना सरस्वती का ध्येय है। इसी कर्त्तव्यपालन के कारण वह हिंदी प्रेमियों की प्रीतिभाजन हुई और साठ वर्षों के दीर्घकाल में उसे उनका स्नेह, आदर, सहयोग और आशीर्वाद मिलता रहा, और इसी कारण जब उसके असंख्य सहयोगी समाप्त हो गये, वह जीवित रही। उसका अतीत उपयोगी और स्पृहणीय रहा। भगवान् से प्रार्थना है कि वह अपने ध्येय पर दृढ़ रहकर परिवर्तित स्थितियों में हिंदी और हिंदी प्रेमियों की समयानुकूल सेवा उत्तरोत्तर कुशलता से करती रहे, और जब उसका प्रथम शती-उत्सव मनाया जाय तब भी उसे हिंदी की सबसे पुरानी और सबसे प्रतिष्ठित पत्रिका होने का गौरव मिले।

❀ ❀ ❀

# सरस्वती के आविर्भाव के समय हिन्दी की अवस्था

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

जिन मुसलमान आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण कर उसका शासन अनेक वर्षों तक किया था, वे न अरब थे और न ईरानी, वे तुर्क थे। किसी समय सिकन्दर के आक्रमण के पहले ईरान का साम्राज्य बहुत बड़ा था। भारत का सिन्ध भी उसीमें था। एशिया में मध्य-एशिया तक वह फैला था और यूरोप में भी ईजियन समुद्र तक उसकी सीमा थी। इसलिए जैसी अँगरेजी आज अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, वैसी ही उस समय फारसी थी। तुर्क अपनी तुर्की भाषा के बदले उसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के पैरोकार थे, जिस तरह आज कांग्रेस के नेता अँगरेजी के हैं। यही कारण है कि महमूद गजनवी की प्रशंसा में फिरदौसी ने जो शाहनामा लिखा था, वह तुर्की के बदले फारसी में ही लिखा गया था। इसलिए तुर्की जबान जहाँ थी, वहीं रह गयी; और फारसी शासन की भाषा हो गयी। कारण यह है कि अविकसित तुर्की हुकूमत की जबान होने के लायक वैसे ही नहीं समझी गयी जैसे आज हिन्दी नहीं समझी जाती।

इस तरह फारसी मुसलमानी हुकूमत की जबान बन गयी, चाहे दिल्ली के बादशाह तुर्क थे या पठान अथवा मुगल। इसलिए सरकारी नौकरियाँ पाने के लिए हिन्दुओं में कायस्थों ने पहले पहल फारसी पढ़ी और सिकन्दर लोदी के जमाने में प्रायः १५२० के लगभग वे शाही दफ्तरों में दाखिल होने लगे। फिर तो किसीने यह भी नहीं सोचा कि देश के लोग कौन-सी भाषा बोलते हैं। हाँ, मालगुजारी के कागज-पत्र दस्तूर-उल-अमल हिन्दी में ही रहे। यह अवस्था अकबर के शासनकाल के पूर्वार्द्ध तक रही। इसके बाद डॉ० ब्लाकमैन के अनुसार ये दस्तूर-उल-अमल भी अकबर के राजस्व-मंत्री टोडरमल की आज्ञा से फारसी में कर दिये गये। इस प्रकार देश की भाषा और शासन की भाषा में कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। फिर तो मुगलों की अमलदारी जहाँ कहीं रही, वहाँ फारसी का ही बोलबाला हो गया।

परन्तु दक्षिण भारत ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा में मुगलों से डटकर मोर्चा लिया। इस सम्बन्ध में ब्राह्मणी

राज्य के कर्णधार ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। गंगू नामक ब्राह्मण के यहाँ हुसैन नाम का मुसलमान नौकर था। गंगू शायद ज्योतिषी या नजूमी था। इसने भविष्यवाणी की थी कि हुसैन सुलतान होगा। घटनाचक्र से हुसैन एक राज्य का स्वामी हुआ और उसने अपने राज्य को गंगू की भविष्यवाणी के कारण ब्राह्मणी राज्य नाम ही नहीं दिया, गंगू को अपना मंत्री भी बनाया। इसकी देखादेखी दक्षिण के अन्य राज्यों ने भी हिन्दू ब्राह्मणों के हाथों में राजस्व की व्यवस्था दे दी। इस प्रकार दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में हिन्दू ब्राह्मण राजस्व मंत्री होने लगे तथा दस्तूर-उल-अमल भी दक्षिणी भाषाओं में ही रहे।

जब भारत पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य हो गया और उसके भारतीय अधिकारियों को मालूम हुआ कि फारसी भारत की भाषा नहीं है, तब उन्होंने फारसी को हटाकर उसकी जगह देशी भाषाओं को देना तय किया। यह काम बंगाल से शुरू किया गया। १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में बंगाल से फारसी हटाकर बंगला भाषा को उसकी जगह दी गयी। उस समय तक बंगालियों ने फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। फारसी और उर्दू में वे शायरी भी कर लेते थे। मेरे मास्टर साहब बाबू दीनानाथ दे बंगालियों के इस गुण की बड़ी प्रशंसा करते थे कि शासकों की भाषा बड़ी जल्दी सीख लेते हैं।

पश्चिम में कम्पनी का शासन देर में हुआ और इसलिए यहाँ फारसी हटाने का काम कोई सौ साल बाद शुरू किया गया। यहाँ देश-भाषा के पद के दो दावेदार थे—हिन्दी और उर्दू। इसलिए बंगाल में बँगला भाषा की जैसी उन्नति हुई, वैसी यहाँ नहीं हो पायी। इसके दो कारण थे। फारसी के हिमायती किसी भाव हिन्दी को नहीं चाहते थे। वे उसे फूटी आँखों भी देखने के रवादार न थे। शासन में उन्हींकी चलती-बनती थी। इसलिए उनके आग्रह पर कम्पनी के अधिकारियों ने १८३८ में उर्दू को ममालिक मगर्बी व शुमाली अथवा पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा करार दे दिया।

इस निर्णय का कारण सर सय्यद अहमद खाँ की जबर्दस्त शख्सियत थी। हिन्दी के हामी अकेले राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द थे, जिनका उस समय तक कोई बड़ा जोर न था। फिर भी राजा साहब ने हिन्दी की बड़ी पैरवी की। उर्दूवालों का तर्क था कि हिन्दी कोई जबान नहीं है। सरिश्ते तालीम में चलाने लायक उसमें किताबें तक नहीं हैं, इसलिए उसे किसी तरह की मान्यता न दी जाय। इस पर राजा साहब ने आप ४० किताबें लिखीं और अपने साथियों और मित्रों से लिखायीं। इससे हिन्दी भी शिक्षा की भाषा मान ली गयी। बंगाल के पण्डितों और अँगरेजी पढ़े-लिखे लोगों, दोनों ने, बँगला की उन्नति में योग दिया। यहाँ अँगरेजी पढ़ें की कमी तो थी ही, पण्डितों ने भी हिन्दी को भाषा तक नहीं माना, उसमें लिखना उन्होंने अपनी शान के खिलाफ समझा। यही कारण है कि जैसी चाहिए, वैसी उन्नति हिन्दी की नहीं हुई।

उन्नीसवीं शती के आरम्भ में हिन्दी की अवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। राजा लक्ष्मणसिंह ने हिन्दी में अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक और मेघदूत का अनुवाद किया था। दूसरे लेखकों में भूप कवि लाला सीताराम और कानपुर मैथा ग्राम के पूर्ण कवि देवीप्रसादजी थे। स्कूलों में जो हिन्दी पुस्तकें चलती थीं वे हिन्दी शिक्षावली थीं, जो पं० दीनदयाल तिवारी और ला० सीताराम के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थीं। पं० श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के काव्यों का पद्यानुवाद करके हिन्दी का मस्तक ऊँचा किया। उस समय तक हिन्दी के कवि समस्यापूर्ति के चक्कर से बाहर नहीं निकल सके। कविता के मासिक पत्र भी समस्यापूर्त्ति के ही प्रकाशक होते थे।

स्कूलों तक ही हिन्दी की शिक्षा सीमित थी। अँगरेजी की शिक्षा जिन स्कूलों में दी जाती थी, उनमें ३० लड़कों में हिन्दी संस्कृत पढ़नेवाले ५-६ और उर्दू-फारसी पढ़नेवाले २४-२५ होते थे। इनमें मुसलमान ही नहीं, कश्मीरी पंडित और कायस्थ जातियों के हिन्दू लड़के भी होते थे।

हिन्दी के कृष्ण पक्ष की चर्चा ऊपर हो चुकी। अब उसके शुक्ल पक्ष की कहानी सुनिये। हिन्दी के पुराने लेखक राजा लक्ष्मणसिंह के बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी का भाण्डार भरने का बड़ा काम किया। इनके पिता भी कविता करते थे और इन्होंने किशोरावस्था से कविता करना आरम्भ किया था। ये आप लिखते थे और लोगों को हिन्दी में लिखने के लिए प्रोत्साहित भी करते थे। उस समय के लेखक दिल्ली के ला० श्रीनिवास दास, हाथरस के बाबू तोताराम, प्रयाग के पं० बालकृष्ण भट्ट, मिरजापुर के चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन तथा लाला सीताराम भूप कवि तथा श्री देवीप्रसाद दूबे कवि थे। १८४५ में राजा शिवप्रसाद

सितारे हिन्द ने 'बनारस अखबार' निकाला था। यही पहला अखबार हिन्दी में निकला था। इसके बाद वहींसे 'सुधाकर' बंगाली बाबू तारामोहन मैत्र ने हिन्दी-बँगला में निकाला था। भारतेन्दु ने कई पत्रिकाएँ हिन्दी में प्रकाशित की थीं। इनके नाम कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और बालाबोधिनी थे। नाथद्वारे के पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने मोहनचन्द्रिका निकाली, जो आगे चलकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मोहन चन्द्रिका' बन गयी।

हिन्दी के प्रचार प्रसार में स्वामी दयानन्द सरस्वती का जबरदस्त हाथ था। आर्यसमाज का सारा साहित्य हिन्दी में ही प्रकाशित होता था। इसे वे आर्य भाषा कहते थे। उर्दू फारसी पढ़नेवालों को हिन्दी संस्कृत पढ़ने को प्रोत्साहित करते थे। पंजाब पर स्वामीजी का बड़ा प्रभाव पड़ा था और ला० लाजपतराय जो किसी समय नमाज पढ़ते थे, वेदानुयायी हो गये थे। पंजाब में हिन्दी संस्कृत का बड़ा श्रेय स्वामीजी को है।

१८८५ में दो दैनिक पत्र हिन्दी में निकले। एक कानपुर से श्री सीताराम ने 'भारतोदय' और दूसरा कालाकांकर से राजा रामपालसिंह ने 'हिन्दोस्थान' प्रकाशित किया। भारतोदय साल भर के भीतर ही अस्त हो गया। पर राजा साहब का 'हिन्दोस्थान' कोई २२ साल तक प्रकाशित होता रहा। १८७१ में अल्मोड़े से श्री सदानन्द सनवाल ने 'अल्मोड़ा अखबार' प्रकाशित किया। इसकी भाषा बहुत अच्छी थी। उन दिनों कोई मासिक पत्र नहीं निकलता था। आगे चलकर समस्यापूर्त्ति के ही मासिक पत्र निकले। इनमें तथ्य नहीं होता था और न इनका कागज या छपाई ही अच्छी होती थी।

हिन्दी प्रचार में सबसे बड़ा योग बाबू देवकीनन्दन खत्री ने दिया। इनके 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' उपन्यास ने हजारों अपढ़ लोगों को हिन्दी पढ़ा दी।

हिन्दी अखिल भारतीय भाषा रही है। इसलिए इसके पत्र जम्बू और लाहौर तक से निकले। कलकत्ते से हिन्दी चली। वहीं लल्लूलाल और सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम् कालेज में बैठकर प्रेम सागर, लाल चन्द्रिका और सभाविलास तथा नासिकेतोपाख्यान लिखे। यहींसे १८२६ में श्री युगुलकिशोर शुक्ल ने 'उदन्तमार्त्तण्ड' तथा राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' और हिन्दी बँगला दैनिक समाचार—सुधावर्षा, श्यामसुंदर सेन ने निकाला। १८७२ में कार्त्तिकप्रसाद खत्री ने मासिक हिन्दी दीप्तिप्रकाश और पं० केशवराम भट्ट ने साप्ताहिक 'बिहार बन्धु' तथा १८७८ में सारस्वत ब्राह्मण पं० छोटूलाल मिश्र और पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र ने 'भारतमित्र', १८७९ में पं० सदानन्द मिश्र ने 'सारसुधानिधि' और १८८० में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र ने 'उचितवक्ता' निकाला। १८९० में बंगवासी प्रेस से 'हिंदी बंगवासी' और १८९६ में बम्बई के श्रीवेंकटेश्वर प्रेस से 'वेंकटेश्वर समाचार' प्रकाशित हुआ। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस और लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से हिन्दी और संस्कृत की बहुत-सी उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ।

बँगला से हिन्दी में अनेक उपन्यास भी आये। पर हिन्दी करनेवालों का बँगला ज्ञान अधूरा था। वे बहुत से बँगला प्रयोग नहीं समझते थे। प्रयाग से 'प्रयाग समाचार' नामक साप्ताहिक पत्र एक साधनहीन हिन्दी प्रेमी ने निकाला था। हिन्दी में शोधकार्य करनेवाले म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा थे।

हमें इस प्रसंग में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह, बा० नवीनचन्द्र राय और सय्यद इंशाअल्लाह खाँ को भी याद कर लेना चाहिए। इंशा साहब ने तो १९वीं शती के आरम्भ में 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी भाषा और उर्दू अक्षरों में लिखी थी। बा० नवीनचन्द्र राय बंगाली थे। ये लाहौर में रहते थे और ब्राह्मसमाज के प्रचार के लिए हिन्दी में पत्र भी निकालते थे। इन्होंने 'नवीन चन्द्रोदय' नाम से हिन्दी व्याकरण भी लिखा था। इनकी सुपुत्री श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधरी ने १९१० के लगभग इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया था। ये आसाम से हिन्दी में एक पत्रिका प्रकाशित करती थीं। सागर, देवरी कलाँ के सय्यद अमीर अली मीर हिन्दी के अच्छे कवि थे। महाराणा सज्जनसिंह ने 'सारसुधानिधि' को घाटे की पूर्ति के लिए कई हजार रुपये दिये थे। बाद को उदयपुर से 'सज्जन कीर्त्ति सुधाकर' भी निकलने लगा था।

हिंदीभाषी जगत् में हिंदी में एक सचित्र और सुसम्पादित मासिक पत्रिका के अभाव का व्यापक अनुभव हो रहा था। उसी अभाव की पूर्त्ति के लिए 'सरस्वती' का जन्म हुआ। उसने अपना कर्त्तव्य किस प्रकार निबाहा, हिंदी पत्रकारिता को उससे क्या उपलब्धियाँ हुईं, साहित्य और भाषा के विकास में उसने क्या योगदान किया—यह हिंदी संसार में सर्वविदित है।

# सरस्वती का प्रकाशन

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

बीसवीं सदी के आरम्भ में **सरस्वती** का प्रकाशन हिन्दी के लिए एक असाधारण घटना थी, जिसका पता उस समय नहीं लगा, पर समय के साथ स्पष्ट हो गया। **सरस्वती** का नाम पहिले पहल मैंने आजमगढ़ जिले के निजामाबाद कस्बे में सुना। निजामाबाद कस्बा वही है, जहाँ पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पैदा हुए, और वहाँ के तहसीली (मिडिल) स्कूल के प्रधानाध्यापक रहे। यह ख्याल नहीं कि नाम के साथ **सरस्वती** का वहाँ दर्शन भी मिला था। सरस्वती का माहात्म्य स्कूल से निकलने के बाद मालूम हुआ। १९१० ई० में बनारस में पढ़ते समय किसी के पास सरस्वती देखी और माँगकर उसे पढ़ा भी। मालूम नहीं उसका कितना अंश मुझे समझ में आता था। मैं मूलतः उर्दू का विद्यार्थी था। हिन्दी लोगों के कहे अनुसार बिना वर्णमाला सीखे अपने ही आ गयी। और मैं गाँव में लोगों की चिट्ठियाँ हिन्दी में लिखने लगा था।

हिन्दी अँगरेजी सरकार की दृष्टि में एक उपेक्षित भाषा थी। सरकारी नौकरियों के लिए उर्दू पढ़ना अनिवार्य था। सरकारी कागज-पत्र अधिकांश उर्दू में हुआ करते थे। इसी पक्षपात के कारण मुझे उर्दू पढ़ायी गयी। बनारस में संस्कृत पढ़ने लगा था। उर्दू के साथ अगर संस्कृत भी पढ़े, तो हिन्दी अपनी भाषा हो जाती है।

दो एक बरस बाद मैं बनारस छोड़कर बिहार के एक मठ में साधु हो गया। उस समय मैंने पहिला काम यह किया कि सरस्वती का स्थायी ग्राहक बन गया। इसीसे मालूम होगा कि हिन्दी के विद्यार्थी के लिए सरस्वती क्या स्थान रखती थी। उसके बाद शायद ही कभी सरस्वती से मैं वंचित होता रहा—देश हो या विदेश। आरम्भ में मुझे यह मालूम नहीं था कि **सरस्वती** के संपादक पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी उसके प्राण हैं। इंडियन प्रेस की कितनी ही पुस्तकें पाठ्य पुस्तकों में लगी हुई थीं। इसलिए हिन्दी के हर एक स्कूल का विद्यार्थी इंडियन प्रेस को जानता था। **सरस्वती** इंडियन प्रेस से छपती थी। उसका कागज, उसकी छपाई, उसके चित्र आदि सभी हिन्दी के लिए आदर्श थे। उसके लेख भी आदर्श होते थे, यह कुछ दिनों बाद मालूम हुआ। और यह तो बहुत पीछे मालूम हुआ कि गद्य-पद्य लेखों को सँवारने में द्विवेदीजी को काफी मेहनत पड़ती थी। भारत की सबसे अधिक जनता की भाषा की यह मासिक पत्रिका इतनी सुंदर रूप में निकलती थी कि जिसके लिए हिंदीवालों को अभिमान हो सकता था। सरस्वती ने अपना जैसा मान स्थापित किया था, उसके संपादक ने भी वैसा ही उच्च मान स्थापित किया था। नहीं तो हिन्दी से बँगला और कुछ दूसरी भाषाएँ इस क्षेत्र में जरूर आगे रहतीं।

सरस्वती हिन्दी साहित्य के सारे अंगों का प्रतिनिधित्व करती थी। गद्य में कहानियाँ, निबंध, यात्राएँ आदि सभी होते। पद्य में स्फुट कविताएँ ही हो सकती थीं क्योंकि विस्तृत काव्य को कई अंकों में देने पर वह उतना रुचिकर न होता। मालूम ही है कि हिन्दी मातृभाषा तो हममें बहुत थोड़े से लोगों की हैं। मातृभाषाएँ लोगों की मैथिली, भोजपुरी, मगही, अवधी, कनौजी, ब्रज, बुंदेली, मालवी, राजस्थानी आदि भाषाएँ हैं। इनमें से कौरवी छोड़कर बाकी सभी हिन्दी से काफी दूर हैं। इस कारण हिन्दी व्याकरण शुद्ध लिखना बहुतों के लिए बहुत कठिन है। इन २२ भाषाओं के बोलनेवालों को शुद्ध भाषा लिखने, बोलने, पढ़ने का काम सरस्वती ने काफी सिखाया और सबमें समानता कायम की। सरस्वती का यह काम प्रचार की दृष्टि से ही बड़े महत्त्व का नहीं था, बल्कि इससे व्यवहार में बहुत लाभ हुआ।

सरस्वती-युग से पहिले यह बात विवादास्पद चली आती थी कि कविता खड़ी बोली (हिन्दी) में की जाये या ब्रजभाषा में। गद्य की बोली खड़ी बोली हो, इसे लोगों ने मान लिया था। लेकिन पद्य के लिए खड़ी बोली को स्वीकार कराना सरस्वती और उसके संपादक पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का काम था। बीसवीं सदी की प्रथम दशाब्दी में अब भी उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में लोग ब्रजभाषा में कविता करते थे। उनकी ब्रजभाषा कैसी होती थी, इसे बतलाना कठिन है, क्योंकि भोजपुरी भाषाभाषी ब्रजभाषा को 'इतै', 'उतै' जैसे कुछ शब्दों को छोड़कर अधिक नहीं जानते थे। बहु-प्रचलित महाकाव्य रामचरित मानस था, जो अवधी का था, जिसका ज्ञान

कुछ अधिक हो सकता था। ब्रजभाषा की कविताएँ बहुत कम प्रचलित थीं। तो भी आग्रह ब्रजभाषा में ही कवित्त और सवैया कहने का था। सरस्वती ने यह भाव मन में बैठा दिया कि यदि खड़ी बोली में गद्य, कहानी, निबंध लिखे जा सकते हैं और खड़ी बोली में उर्दूवाले अपनी शायरी कर सकते हैं, तो कविता भी उसमें हो सकती है। श्री मैथिली-शरण गुप्त खड़ी बोली के आदि कवियों में हैं। उनको दृढ़ता प्रदान करनेवाले द्विवेदीजी थे।

प्रायः चार दशकों तक "सरस्वती" का संपादन ही द्विवेदीजी ने नहीं किया, बल्कि इस सारे समय में--साहित्यिक भाषा निर्माण के काम में--द्विवेदीजी ने चतुर माली का काम किया। आगे आनेवाली पीढ़ियाँ "सरस्वती" और द्विवेदीजी के इस निर्माण कार्य को शायद भूल जायें। किसी भाषा के बारे में किसी एक व्यक्ति और एक पत्रिका ने उतना काम नहीं किया, जितना हिन्दी के बारे में इन दोनों ने किया।

# सरस्वती और मैं

संत निहालसिंह

इस असार संसार में संयोग की जो देवी हमें दूसरों से मिलाती है, आज से सत्तावन वर्ष पूर्व, एक दिन, मुझे एक समाचार विक्रेता की दूकान पर ले गयी। वहाँ पत्र-पत्रिकाओं की जो गड्डी लगी थी उसमें से मैंने एक छोटे आकार की पतली मासिक पत्रिका निकाल ली जिसके मुख-पृष्ठ पर विद्या की देवी सरस्वती का चित्र बना हुआ था।

"हाँ, हाँ" उस फोटोग्राफी की दूकान के कार्यकर्ता और स्वामी पंडित दीनानाथ बाली ने कहा--"इसे अवश्य पढ़िए। इसका प्रकाशन अभी हाल ही में आरंभ हुआ है। मैंने इसे पहिली बार मँगाया है। मैंने एक वर्ष का मूल्य मनीआर्डर से भेज दिया है। आपको पत्रकारिता का इतना शौक है। आपको यह दिलचस्प मालूम होगी।"

मुझसे अधिक कहने की आवश्यकता न थी। छपाई बहुत बढ़िया थी। बाद में मुझे मालूम हुआ कि वह इलाहाबाद के एक छापेखाने में छपती है जिसके स्वामी चिंतामणि घोष थे। जब मैं बनारस गया (उन दिनों अँगरेज हमारी वाराणसी को इसी नाम से पुकारते थे) तब वहाँ मुझे उनके कुछ रिश्तेदारों से मिलने और उन्हींके एक दूसरे कार्यालय को देखने का अवसर मिला।

बोस (यही उनका नाम था) के हाथों यह छोटा-सा प्रकाशन पड़ गया था। तीन सहपाठी मित्रों ने काशी नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से इसका प्रकाशन आरंभ किया था, और इस सभा की स्थापना उन्होंने अपनी किशोरावस्था में ही कर डाली थी। इनमें से दो सहपाठियों --श्यामसुंदरदास और रामनारायण मिश्र से मेरी मित्रता हो गयी। यदि घोष और बोस न मिले होते, और यदि महावीरप्रसाद द्विवेदी की सहायता न प्राप्त हुई होती तो यह स्तुत्य प्रयास भी उन असंख्य पत्र-पत्रिकाओं की तरह ही असफल हो जाता जो निकाली तो उत्साह से जाती है, पर जिन्हें पोषण करने के लिए व्यवसाय-कुशल व्यक्ति और धन का सहारा नहीं मिलता।

मुझे यह सूचना सन् १९०४ में रामनारायण मिश्र से मिली जब मैं बौद्ध मिशनरी अनागरिक धर्मपाल के साथ ठहरा हुआ था जिन्होंने अपना शिविर सारनाथ में बना रखा था। वे यह देखकर बहुत प्रसन्न थे कि घोष और बोस के अभिभावकत्व में उनकी मानसपुत्री का रूपरंग इतना निखर गया है। उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी को महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति बतलाया। श्यामसुंदरदास ने, जो इनसे अधिक विद्वान् थे, इन बातों की पुष्टि की।

( २ )

१९१० की ग्रीष्मऋतु में मुझे चिंतामणि घोष से व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य हुआ। उस समय मैं पंडित मोतीलाल नेहरू का मेहमान था। आरा, बिहार के सच्चिदानंदसिंह की कृपा मेरे ऊपर नयी शताब्दी के आरंभ ही से हो गयी थी। वे वकालत करने के

साथ-साथ 'हिंदुस्तान रिव्यू' नामक मासिक का सम्पादन भी कर रहे थे। वे आनंदभवन आये और अपने मोटर में मुझे इंडियन प्रेस ले गये। घोष के साथ उनका व्यापारिक संबंध था। उस समय उन्हें इस बात का क्षोभ था कि वह संबंध समाप्त हो रहा था। इसका कारण कोई आपसी मत-भेद नहीं था, किंतु इसका एकमात्र कारण उस समय की उग्ररूप से परिवर्तित राजनीतिक स्थिति थी। विदेशी शासक तथा-कथित 'अशान्ति' को दबाने के लिए भारतीय जनमत को दबाने पर तुले हुए थे जो इस बात से असंतुष्ट था कि भारतवासियों को पूर्णरूप से विकसित होने का अवसर नहीं दिया जा रहा। वे यह देखकर परेशान हो गये थे कि अँगरेजी वस्तुओं का बायकाट इतना सफल हो गया था और भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में छोटे-बड़े सब स्वदेशी आंदोलन से अनुप्राणित हो गये थे। पुलिस के पाशविक अत्याचारों और मजिस्ट्रेटों की हृदयहीनता ने उन्हें विदेशी सत्ता के दलालों पर बम फेंकने और पिस्तौल से उड़ा देने के लिए नौजवानों को बाध्य कर दिया था। उस आंदोलन को दबाने के लिए जो पागलपन के उपाय किये गये उनमें एक यह कानून भी था कि राजद्रोही लेख के लेखक के साथ उसको प्रकाशित और मुद्रित करनेवाले प्रकाशक और मुद्रक को भी फाँसा जाय। चिंतामणि बुद्धिमान् थे, और उन्होंने इस कानून के बनने के बाद यह निश्चय किया कि वे सच्चिदानंद सिनहा तथा और दूसरे उन लोगों से संबंध-विच्छेद कर लें जिनके पत्र उनके प्रेस में छपते थे। उनका कहना था कि जब तक वे स्वयं प्रत्येक शब्द न पढ़ लें तब तक वे उसे छापने की आज्ञा नहीं दे सकेंगे, और उनकी अवस्था इतनी अधिक हो गयी थी, और उनकी दृष्टि इतनी कमजोर हो गयी थी कि वे अब अपनी आँखों पर इतना जोर नहीं दे सकते।

मैंने उनका यह निश्चय कि आपत्ति मोल लेने के बजाय रुपया छोड़ा जाय, पसंद किया। उनके इस निश्चय से सरस्वती को लाभ हुआ जिसके वे स्वामी थे और जिसका वे संचालन कर रहे थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र उनके सहायक थे और उनमें परिवार की समृद्धि बढ़ाने का जितना उत्साह था उतना ही उनमें इस बात का भी विवेक था कि वे राजनीतिक तथा अन्य झगड़ों से दूर रहें। इसके कुछ दिनों बाद ही उनके द्वितीय पुत्र से मेरा पत्र-व्यवहार होने लगा जो प्रेस के अध्यक्ष हो गये थे। यह पत्र-व्यवहार अधिकतर कामकाज से संबंधित होता था, और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया मैं उनके अधिकाधिक निकट आता गया।

( ३ )

चिंतामणि बाबू की भेंट के बाद ही आनंदभवन में आकर महावीरप्रसाद द्विवेदी मुझसे मिले। जब मोती-लालजी घर पर न होते या जब वे बाहर न दिखायी पड़ते तब मुझसे मिलने के लिए तरह-तरह के लोगों का ताँता लगा रहता था। उन्होंने (द्विवेदीजी ने) बिना कोई भूमिका बाँधे स्पष्ट रूप से मुझसे कहा कि सारे संसार के पत्र बारहों महीने मेरी कलम की कृतियाँ पाते रहते हैं। केवल हिंदी ही मेरे साहित्यिक समर्थन से वंचित रह जाती है। कुछ उत्तर देने के लिए मैंने उनसे कहा कि "पंडितजी! आपको यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि मेरी पहिली पुस्तिका अखिल संसार की भाषा यानी अँगरेजी में नहीं थी, वह एक भारतीय भाषा में थी।" और मैंने उन्हें व्यक्तिगत स्वा-स्थ्य पर लिखी उस पुस्तिका का हाल बतलाया जिसे सन् १९०३ में अमृतसर की खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी ने प्रकाशित किया था। किंतु महावीरप्रसादजी को टाला नहीं जा सकता था। संसार के किसी भी प्रदेश के किसी महान् सम्पादक को टाला नहीं जा सकता। और सम्पादनकला के प्रत्येक मापदण्ड से वे अप्रतिम सम्पादक थे। प्रायः बीस वर्ष तक उनके द्वारा सम्पादित सरस्वती के अंक इस बात को भली भाँति सिद्ध करते हैं। बिना अपनी भिक्षा प्राप्त किये वे ब्राह्मण देवता बिदा नहीं हुए।

इस घटना के ११ महीने बाद जब मैं भारत और मिस्र की यात्रा करके इँगलैंड पहुँचा, तब मुझे द्विवेदीजी का पत्र मिला जिसमें उन्होंने नया लेख भेजने की याद दिलायी थी। अब प्रायः आधी शती के बाद जब मुझे इस घटना का ध्यान आता है तो मुझे याद पड़ता है कि उन्होंने पत्र के साथ सरस्वती का एक अंक भी भेजा था जिसमें 'संत निहालसिंह' के लिखे एक रेखाचित्र को बड़े सम्मान के साथ छापा गया था। उसे देखकर मेरी पत्नी बड़ी प्रभावित हुई थीं, और जब तक मैंने सरस्वती के लिए एक लेख लिख नहीं लिया तब तक व मुझसे बराबर उसे लिखने का अनुरोध करती रहीं। उन्होंने उस लेख को सचित्र बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करके कई फोटो-चित्र भी एकत्र किये। तब से जब कभी मुझे लेख भेजने में बहुत देर हो जाती, द्विवेदीजी का (और उनके बाद उनके

उत्तराधिकारियों का) पत्र आ पहुँचता, और मुझे सरस्वती के द्वारा मातृभूमि की सेवा करने की याद दिला देता।

अपने लेखों में मैंने पाठकों को इस विशाल गतिशील और सजीव संसार की बातें बतलाने का प्रयत्न किया है। अपने पाठकों को अपने साथ प्रमुख प्रगतिशील राष्ट्रों के हरावल में ले जाना मेरा उद्देश्य रहा है। इसके साथ ही मैंने अपने पाठकों को स्वतंत्रता संघर्ष के योद्धाओं के अंतरंग रेखाचित्र देने का प्रयत्न किया है—विशेषकर उन स्त्री-पुरुषों के रेखाचित्र—जिन्होंने भारत में या विदेश में हमारे घर पर पधार कर श्रीमती निहालसिंह और मुझे सम्मानित किया। प्रकाशक, सम्पादकों और पाठकों द्वारा इन लेखों की जो सराहना हुई उससे हमें वर्णनातीत संतोष हुआ।

इस पत्रिका से संबंध हो जाने का एक लाभ यह हुआ कि के मुझे लगातार पचास वर्ष से सरस्वती मिलती रही है। प्रयागराज के संगम पर जो नीति चलती और पत्रिका अंकों में लेखों और चित्रों में उसका जो मूर्तरूप मिलता, उसका मुझे पूरा पता रहता। इस पत्रिका के संचालकों ने जिस उत्साह, योग्यता और अध्यवसाय के साथ इस माध्यम के द्वारा राष्ट्र की जो महती सेवा की है, उसकी प्रशंसा करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। यह सेवा बहुमुखी रही है। इससे साहित्य और कला की समृद्धि तो हुई ही है, साथ ही साथ हमारी और दूसरी संस्कृतियों, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं एवम् प्रवृत्तियों तथा पुरातत्त्व और इतिहास के बारे में भी हिंदी पाठकों का ज्ञानवर्द्धन हुआ है। पाठकों को भारत और संसार की घटनाओं को इस ढंग से बतलाया जाता रहा है कि वे सरलता से उनकी समझ में आ जायँ और वे उन्हें निष्पक्ष मालूम हों। टिप्पणियाँ संतुलित होती हैं, पाठकों पर कोई मत लादे नहीं जाते। यह ठीक ही है कि उन्हें स्वयं अपना मत निर्धारित करने का अवसर दिया जाता है। वर्तमान सम्पादक के काल में पत्रिका के कलापक्ष ने जो उन्नति की है उसकी प्रशंसा कहाँ तक की जाय। एक भारतीय और अखिल-जगत् पत्रकार की हैसियत से (जो शायद अति क्रियाशील पत्रकारों में सबसे पुराना है) मैं इस पत्रिका की प्रशंसा करता हूँ जो इतनी पुरानी है और जिससे इतने स्थायी लाभ हुए हैं। मेरी यही कामना है कि अभी तक इसने जो उन्नति की है वह केवल भविष्य की उन्नति की इंगित मात्र प्रमाणित हो। यह पत्रिका जो नाम में निजी पत्रिका है, किंतु वास्तव में—अपने दृष्टिकोण, उद्देश्य और व्यवहार में राष्ट्रीय है,—अपने स्वामी, संचालकों और सहायकों के सम्मिलित प्रयत्नों से आगे और भी अधिक सफलता प्राप्त करे।

* * *

# कूर्मांचल और सरस्वती

डॉ० हेमचन्द्र जोशी

जब सरस्वती का प्रकाशन आरंभ हुआ, मैं छः बरस का था। मेरे एक चचेरे भाई पं० चिंतामणि जोशी 'कोह हिमालिया' नामक एक सामयिक पत्र प्रकाशित करते थे। यह सामयिक पत्र बड़ा ही असामयिक था—कभी छः महीने में निकलता था तो कभी वर्ष भर में। प्रेस और लेख-संग्रह की सुविधा के अनुसार जब अवसर मिला यह छप जाता था। स्व० पिताजी इसके ज्वाइंट एडीटर थे। पत्र देवनागरी में छपता था किन्तु उसकी भाषा विशुद्ध उर्दू होती थी। पिताजी को साहित्य-संगीत और कला से प्रेम था। उन्हें हिंदी, अँगरेजी, संस्कृत, फारसी और उर्दू, बँगला आदि का बहुत अच्छा ज्ञान था। छुटपन में मैंने उनसे ही बँगला सीखी और उर्दू फारसी आदि का अभ्यास किया। उन्हें संगीत से प्रेम था और सितार बजाने में सारे कुमायूँ के उस्ताद उनका लोहा मानते थे। चित्र ऐसे उत्तम बनाते थे कि जिन्होंने उनके चित्र देखे, सभी का जी उनकी कलम चूमने को करता था। इसी प्रकार आयुर्वेद, पाक-शास्त्र आदि के वे सिद्धहस्त ज्ञानी थे। उन्होंने उक्त चचेरे भाई पं० चिंतामणि जोशी को, सरस्वती के प्रकाशन के समाचार की सूचना पाते ही, सरस्वती का ग्राहक बनने का अनुरोध किया और पहले अंक से सरस्वती अपने घर आने लगी।

दस-बीस परिवारों में यह सरस्वती जाती थी और सब बड़े प्रेम से उसे पढ़ते थे। मेरे पिताजी मुझे भूल से संस्कृत पाठशाला में भर्ती करवा आये थे। दो साल संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर चुका था। जब सरस्वती को प्रथम बार देखा तो वीणा-पुस्तक-धारिणी के भव्य चित्र का बड़ी श्रद्धा से दर्शन किया। भीतर देखा तो इधर-उधर के कुछ वाक्य पढ़े। कई तो समझ में आ गये और कई मेरे लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' दिखे। फिर प्रति मास सरस्वती दर्शन देती और मैं उसे दीवार के सहारे खड़ा करके देवी के चित्र से ज्ञान पाने की प्रार्थना करता। सरस्वती के लेख समझना तो मेरे लिए असंभव ही था। चार-पाँच वर्ष तक अभ्यास करते-करते सरस्वती की हिंदी मेरी समझ में अच्छी तरह से आने लगी।

१९०३ ई० में मेरे जीवन में विचित्र काया-पलट हुआ। एक सहपाठी ने पढ़ने के लिए 'चंद्रकांता' उपन्यास के चार भाग दिये और मैं रातभर जागकर चारों भागों को चाट गया। देवकीनंदन खत्रीजी के इस तिलस्मी उपन्यास ने मुझे उपन्यास पढ़ने की जबरदस्त चाट लगा दी। इससे हिंदी का अभ्यास बहुत बढ़ गया और सरस्वती के लेख भी समझ में आने लगे। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का संपादन मेरे मन के अनुकूल होता था। सरस्वती में देशी और विदेशी ज्ञान का अजीब सम्मिश्रण था और मैं इस सम्मिश्रण से बहुत लाभ उठाता था। धन्य हैं पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी कि उन्हें देश-विदेश, जहाँ से भी ज्ञान और मनोरंजन की सामग्री मिली कि उन्होंने सट से उठा ली और सरस्वती के पाठकों के सामने उसे उपस्थित कर ही दिया। इस सामग्री को पढ़ते-पढ़ते मैं अघाता न था। उनका एक स्तंभ 'विविध विषय' विश्व के वैज्ञानिकों की नई खोज और नये आविष्कारों से लबालब भरा रहता था। वे स्वयं विदेशों के शिक्षाप्रद और ज्ञानवर्धक विषयों पर लिखा करते थे। एक्स-रे आदि पर उनके लेख उनके ज्ञान-पिपासा का परिचय देते रहे। ऐसे पचासों लेख सरस्वती में भरे पड़े हैं। लेख सचित्र होने के कारण, सोने में सोहागा मिल गया है। श्री सत्यदेव, सेन्ट निहालसिंह, भोलादत्त पांडे (कुमाऊँ से पहले पहल, शिक्षा प्राप्त करने के लिए, जापान और अमेरिका जानेवाले) श्री प्यारेलाल मिश्र आदि के लेख अमरीका, जापान, इँगलैंड आदि से आते थे। इनमें विदेशी जीवन और शिक्षा की प्रशंसा के पुल बाँधे जाते थे। परिणाम यह हुआ कि इन लेखों को पढ़कर मुझे छुटपन में ही विदेश जाने की सूझी। विदेश में निर्धन विद्यार्थियों के लिए भी शिक्षा प्राप्त करने के साधन थे। हम कुछ नवयुवक इन लेखों को पानी की तरह पी जाते थे। मेरे चार-पाँच साथियों ने एक मंडली बनाई और भागकर अमरीका पहुँचने की योजना बनाई। परिणाम यह हुआ कि हम एक रोज घर से भाग निकले। भाग्य का चक्र देखिये कि अल्मोड़ा नगर से आठ मील दूरी पर स्थित प्यूड़ा नामक स्थान से आधा मील आगे हमारे एक साथी के चचा घोड़े पर सवार, कहीं से अल्मोड़ा वापस आ रहे थे। उनके चपरासियों ने दो लड़कों को तो तुरंत पकड़ लिया, हम तीन साथी जंगल में घुसकर छिप गये। परस्पर परामर्श किया तो इस निदान पर आये कि अब आगे भागना मूर्खता ही होगी क्योंकि घर पर पता चलते ही काठगोदाम तक जरूर पकड़ लिये जायेंगे। सुबह के भागे हम लोग शाम को घर वापस पहुँच गये। समझे—"जान बची और लाखों पाये, खैर से बुद्ध घर को आये।" खाया-पिया और आराम से मुँह ढक कर सो रहे। सुबह घर में खबर लगी कि हम भागे और रास्ते में पकड़ लिये गये तो घर में माता-पिता की बड़ी डाँट पड़ी, किन्तु वरदा और कामरूपणी सरस्वती का प्रताप देखिए कि जब १९२३ ई० में मेरे पास विदेश जाने लायक रुपया आया तो मैं सात वर्ष के लिए योरप चला गया। यह सुफल सरस्वती के लेखों से ही मिला।

सरस्वती में लेख पढ़कर मेरा परिचय श्री सत्यदेवजी से हुआ। १९१२ में वे मेरे घर अल्मोड़ा आये। पुलिस ने मेरा सारा घर घेर लिया। पिताजी गवर्नमेंट पेंशनर थे। वह बड़ी विपदा में फँसे। स्व० गृहमंत्री पं० गोविंदवल्लभ पंत उस समय वकालत करते थे। वे नरम दल में थे जो सरकार को खुश करना भी चाहता था और स्वराज्य प्राप्त करने का दम भी भरता था। उन्होंने भी मुझसे आग्रह किया कि मैं स्वामी सत्यदेवजी से संबंध छोड़ दूँ क्योंकि भविष्य में जीवन में संकट रहेगा। पर कई कारणों से मैं ऐसा न कर सका। स्वामी सत्यदेवजी से मेरा संबंध बना रहा और स्वामीजी की ओजस्विनी वाणी ने कुमाऊँ भर में राष्ट्रीय जागृति भर दी। यह भी 'सरस्वती' की पूजा का ही फल है। छुटपन में सरस्वती पढ़ते समय मुझे सरस्वती के कुछ कुमाउनी लेखकों के प्रति महान् श्रद्धा हो गयी। स्व० गृहमंत्री पं० गोविंदवल्लभ पंत के प्रति भी

यह श्रद्धा जागृत हो उठी थी। उनका एक लेख १९०९ ई० में छपा था। पं० लीलानंद जोशी का भी लेख सरस्वती में छपा था। इनके प्रगाढ़ पांडित्य की कुमाऊँ भर में चर्चा थी। इनका अँगरेजी ज्ञान भी अच्छा था। यह कुमाऊँ के कमिश्नर के सरिश्तेदार थे। मेरे ऊपर भी इनकी बड़ी कृपा थी। यह भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे और संस्कृत के विशेष पंडित होने के कारण संस्कृत की सरकारी परीक्षाओं के परीक्षक भी रहते थे। सनातन शर्मा सकलानी की कविताएँ पढ़कर महान् आनंद मिलता था क्योंकि यह खड़ी बोली में कविता करते थे और अपनी कविता में रस की वह पुट देते थे कि बार-बार पढ़ने पर भी जी कभी नहीं अघाये। सकलानीजी अल्मोड़े में डिप्टी-इंस्पेक्टर आँफ स्कूल्स थे। बड़े शान्त-स्वभाव थे और बोलते भी बहुत कम थे। जब-जब इनको देखा, मन से इन्हें प्रणाम किया। नाट्यकार पं० गोविंदवल्लभ पंत और इलाचंद्र जोशी के लेख भी बाद की सरस्वती में छपे। मुझे गर्व है कि इन दोनों को हिंदी की ओर मैंने ही आकर्षित किया। दोनों कुमाऊँ और हिंदी के रत्न हैं। बचपन में मैं 'अरुण' नामक एक हस्तलिखित साप्ताहिक-पत्र निकालता था। उससे अल्मोड़ा नगर में बड़ी साहित्यिक हलचल मची और प्रतिभा से मंडित कुछ किशोर हिंदी के आकाश में उसी हलचल के फलस्वरूप चमकने लगे। इनमें से ही एक पं० सुमित्रानंदन पंत भी हैं जो 'सरस्वती' के श्रेष्ठ कवियों में से हैं। तारा पांडे ने भी सरस्वती को अपनी कविताओं से सुशोभित किया।

छुटपन की एक घटना स्मृति में अभी तक ताजी है। सरस्वती के लेखक मेरी दृष्टि में अगाध ज्ञान के पंडित थे। छुटपन में जब उन्हें देखता तो हृदय में विचित्र बेकली पैदा हो जाती थी कि इतने ऊँचे पर असीम ज्ञान का आहरण कैसे किया जाता है तथा किस प्रकार सरस्वती तक अपनी पहुँच हो सकेगी। मेरे चचेरे भाई पं० बालादत्त जोशी भी मेरी दृष्टि में एक समय ऐसे ही महान् पुरुष थे। एक बार देखता क्या हूँ कि यह बालादत्त जोशीजी अपने मोहल्ले की एक कपड़े की दूकान में सरस्वती खोलकर बैठे हैं और सबको कोई लेख सुना रहे हैं। भीड़ देखकर मैं भी वहीं तमाशायी की तरह बैठ गया। दो-तीन साथी भी आ जुटे। लेख तो समझ में कुछ नहीं आया किन्तु अंत में पूछताछ करने पर पता चला कि भाई साहब का एक मनोरंजक श्लोक सरस्वती में छपा है। वे इस दूकान में सभा के बीच अपना वह मनोरंजक श्लोक और उसकी व्याख्या पढ़ रहे थे। तमाशा देखिए कि इस घटना के बाद मेरे भाई साहब जब घर से बाहर निकलते थे, सरस्वती के इस अंक को बगल में दबाकर ही निकलते थे। अल्मोड़ा सदा साहित्यिक नगर रहा। वहाँ अनपढ़ सदा नहीं के बराबर रहे। इसलिए प्रायः दो महीने तक इस लेख की बड़ी चर्चा रही और भाई साहब ने चालीस-पचास घरों और दूकानों के बीच खासी भीड़ में इसको बार-बार सुनाया। इस घटना ने मुझे हिंदी का लेखक बनने के लिए बड़ा ही प्रोत्साहन दिया।

१९११ ई० में मैंने भी उड़ान भरी कि सरस्वती का लेखक बनूँ। उस वर्ष के दिसम्बर महीने के अंत में हिमपात हुआ। बरफ के फाहे आसमान से परियों की तरह झूमते-झामते गिर रहे थे। भूमि सर्वत्र सफेद हो गई थी और हो रही थी। मेरा मन आनंद में सराबोर था। आनन्दातिरेक हुआ तो मैंने एक कविता बना डाली। बार-बार इस कविता को शुद्ध करके मैंने उसे सरस्वती संपादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी को भेज दिया। प्रायः दो सप्ताह बाद पत्र आया कि यह कविता सरस्वती में छापने योग्य तो है किन्तु एक लाइन में एक शब्द ऐसा आ गया है जिसे सरस्वती में नहीं छापा जा सकता क्योंकि यह शब्द ग्रामीण है। यह लाइन थी "सरकते सर सर सरते हुए"। इसमें पं० महावीरप्रसादजी को 'सरकना' अच्छा न लगा। उनके मत से यह शब्द भले लोगों की बोलचाल से बाहर का था। मैंने यह शब्द उर्दू में पढ़ा था और उस समय के प्रमाण के अनुसार इसे ठीक ही समझता था। अब उक्त पद्य के सब शब्द हिंदी शब्दसागर में ले लिये गये हैं। इस कारण मैंने उस शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखना ठीक नहीं समझा और पूज्य सरस्वती संपादक को यह लिख दिया कि आप कृपया उक्त कविता न छापें क्योंकि मैं कोई शब्द बदलने के लिए तैयार नहीं हूँ। इसके बाद मैंने सरस्वती को कोई लेख भेजना उचित न समझा।

सरस्वती में कालिदास की निरंकुशता पर जो लेख छपे वे सदा स्मरणीय रहेंगे। कालिदास के दोष निकालना उस समय बड़े साहस का काम था। कालिदास की पहली आलोचना तो उसके समसामयिक कवि घटकर्पर ने की। कालिदास ने एक स्थान पर लिखा है :—

"एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः"

इसका अर्थ है कि यदि मनुष्य में गुणों का ढेर हो और केवल एक दोष हो तो वह दोष गुणों के इस ढेर में इस प्रकार छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा के किरणों के बीच उसका कलंक अच्छा लगता है। यह श्लोक जब घटकर्पर ने पढ़ा तो वह न रह सका, उसने कालिदास की भूल का तुरंत निराकरण कर दिया। उसने निम्न श्लोक बनाया :—

एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जितीन्दोरिति यो बभाषे।
नूनं न दृष्टम् कविनापि तेन
दारिद्रयदोषो गुणराशिनाशी॥

इसका अर्थ यह है, "जिस कवि ने यह कहा है कि गुणों का ढेर किसी मनुष्य में होने पर उसका एक दोष उन गुणों के कारण लुप्त हो जाता है, अथवा वह दोष भी इस दशा में गुण हो जाता है जैसे चन्द्रमा की गोद में कलंक, उस कवि ने निश्चय ही इस बात का पता नहीं पाया कि दरिद्रता का केवल एक दोष किसी मनुष्य के गुणों के सारे ढेर को खाक कर देता है।" किन्तु पंडित महावीरप्रसाद ने कालिदास के अशुद्ध प्रयोगों का अच्छा दिग्दर्शन कराया और पंडित समाज को यह बताया कि अपने गुरुजनों के दोष भी सबके सामने रखने में साहित्य का महान् कल्याण ही है।

सरस्वती-युग में भाषा-विज्ञान की प्रगति बहुत कम हो पाई थी। इसलिए इसके कुछ वाद-विवाद से भरे लेख विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं समझे जायेंगे। भाषा-विज्ञान पर एक लेख 'भाषा की अनस्थिरता' पर द्विवेदीजी ने लिखा था। यह महत्त्वपूर्ण काम था क्योंकि यह भाषा-विज्ञान पर उस समय पहिला लेख था। 'अनस्थिरता' शब्द के प्रयोग पर बड़ा विवाद चल गया था। किंतु इस विवाद में अधिक सार नहीं था। इस विषय पर कई लेख पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी और बाबू बालमुकुंद गुप्त के छपे थे। वास्तव में यह दोनों शब्द हिंदी भाषा में शुद्ध समझे जायेंगे क्योंकि इस विषय पर हिंदी में कोई नियम नहीं है। प्राकृत में नय प्रत्यय का मुख्य रूप अण चलता था। हिंदी में प्राकृत की परम्परा भी चल रही है और संस्कृत की भी। अजान-अनजान, अहित-अनहित आदि दोनों रूप चलते हैं। तुलसीदास ने तो प्राकृत परम्परा का अनुसरण करके अनभल, अनरीति, अनहित शब्दों का प्रयोग किया है। इसलिए इस विषय पर वाद-विवाद तत्वबोध का अज्ञान ही प्रकट करता है। सरस्वती पर मेरे अनेक संस्मरण हैं, जो लेख बढ़ जाने के भय से यहाँ देना उचित नहीं समझता हूँ। कभी फिर मौका मिलेगा तो लिखूंगा। किंतु एक बात निश्चित है कि बीसवीं सदी के आरंभ में मुझ जैसे हिंदी के क्षुद्र उपासकों ने सरस्वती द्वारा ही हिंदी लिखना सीखा।

* * *

# नागरीप्रचारिणी सभा और सरस्वती

डा० जगन्नाथ शर्मा

भारतेंदु हरिश्चंद्र, उनके मंडल के सहयोगियों और तत्कालीन अन्यान्य हिंदी लेखकों ने भाषा और साहित्य के जिस स्वरूप की प्रतिष्ठापना की थी, उसीका संवर्धन और पल्लवन नागरीप्रचारिणी सभा का इतिहास है। भारतेंदु के अस्तंगत होने के केवल नौ वर्ष बाद ही यह सभा अवतरित हुई, और उसने कुछ ऐसी पुण्यवेला में जन्म ग्रहण किया कि परिस्थितियाँ प्रतिकूल और जटिल होने पर भी जिस-जिस कार्य में सभा हाथ लगाती गयी उसमें उसे आशातीत सफलता मिलती रही। साहित्य के विविध अंगों को संपुष्ट करनेवाले भिन्न-भिन्न विषयों के ग्रंथों का प्रकाशन, हिंदी के प्राचीन और दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों की खोज—जिसके आधार पर ही हिंदी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास निर्माण संभव हो सका—साहित्य संबंधी शोध का मानदंड स्थापित करनेवाली 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन,

आर्यभाषा पुस्तकालय जैसे संग्रह का संघटन और संवर्धन और हिंदी साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्था का बीजवपन आदि ऐतिहासिक महत्त्व के कतिपय कार्य उसी पुण्यवेला में जन्म-ग्रहण के परिचायक हैं।

'सचित्र मासिक पत्रिका' 'सरस्वती' की अवतारणा भी सभा के उन्हीं ऐतिहासिक उद्योगों में परिगणित है। सन् १८९३ से लेकर १८९९ तक अर्थात् सात-आठ वर्षों के अल्प काल में ही सभा के अथक प्रयत्नों से अदालतों में हिंदी-नागरी के व्यवहार की राजाज्ञा हो चुकी थी। खोज, शोध, प्रकाशन और संग्रह विषयक सभा की साहित्य प्रवृत्तियाँ सफलतापूर्वक आगे बढ़ रही थीं। सभा अपने कार्यक्षेत्र को निरंतर व्यापक और विस्तृत करने में उद्युक्त थी। ऐसे ही अवसर पर, अर्थात् अगस्त, १८९९ में इंडियन प्रेस (प्रयाग) के स्वामी ने एक सचित्र मासिक पत्रिका प्रकाशित करने की इच्छा व्यक्त की और उसका संपादन-भार सभा द्वारा ग्रहण किये जाने का प्रस्ताव किया। यह आग्रह अत्यंत सामयिक था और इसके द्वारा उन उद्देश्यों की बहुत कुछ पूर्ति अनायास होनेवाली थी जिनके लिए सभा स्थापित हुई थी और निरंतर जिनकी प्राप्ति के लिए वह प्रयत्न कर रही थी। इंडियन प्रेस का यह पत्र सर्व-प्रथम सभा के साधारण अधिवेशन में तारीख २१ अगस्त, सन् १८९९ ई० को उपस्थित किया गया था। अधिवेशन सायंकाल ५॥ बजे स्व० श्री गोविंददास जी (स्व० भारत-रत्न श्रद्धेय डा० भगवानदासजी के अग्रज और महाराष्ट्र के वर्तमान राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजी के पितृव्य) के सभापतित्व में हुआ था। किंतु, जान पड़ता है कार्याधिक्य के कारण इस पर उस दिन कोई विचार न हो सका। उन दिनों सभा के ऐसे अधिवेशनों में विचारणीय विषय ८-१० ही रहा करते थे। परंतु उपर्युक्त अधिवेशन में कुल २५ विषयों पर विचार हुआ था जिनमें 'सरस्वती' संबंधी पत्र कार्यक्रम की २३वीं संख्या पर था। २४वीं संख्या पर सभा के लिए प्राप्त चार पुस्तकों की सूचना थी और २५वीं पर अधिवेशन के सभापति के लिए धन्यवाद-प्रस्ताव। इस प्रकार इंडियन प्रेस का उक्त पत्र एक प्रकार से अधि-वेशन के अंत में ही उपस्थित हुआ, जिस पर निम्नांकित निश्चय सभा की कार्यविवरण पंजिका में अंकित है :

"(२३) इंडियन प्रेस का २० अगस्त का 'सचित्र मासिक पत्र' संबंधी पत्र सभा में उपस्थित किया गया। आज्ञा हुई कि यह आगामी अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित किया जाय।"

आगामी साधारण अधिवेशन ११ सितंबर, १८९९ ई० को संध्या समय ५॥ बजे उक्त स्व० श्री गोविंददासजी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ जिसमें एतद्विषयक निम्नांकित निश्चय किया गया :

"(५) इंडियन प्रेस के २० अगस्त के 'मासिक सचित्र पत्र' संबंधी पत्र पर निश्चय हुआ कि सभा उस पत्र के संपादन करने का वा उसके संबंध में और किसी कार्य का भार अपने ऊपर नहीं ले सकती है परंतु इंडियन प्रेस को संमति देती है कि वह उस पत्र को अवश्य निकाले क्योंकि उससे भाषा के उपकार की संभावना है और यदि इंडियन प्रेस के स्वामी चाहें तो सभा उन्हें कुछ ऐसे लोगों के नाम बता सकती है जो संपादक का कार्य करने के उपयुक्त हों। वे उनसे सब बातें स्वयं निश्चय कर लें।"

तत्कालीन हिंदी-जगत् के लिए उपर्युक्त प्रकार की एक मासिक पत्रिका की कितनी आवश्यकता थी और उससे हिंदी भाषा तथा साहित्य के प्रचार, प्रसार एवं संवर्धन में कितनी सहायता मिलेगी, इससे उभय पक्ष यद्यपि अवगत थे, तथापि अपने पूर्वसंकल्पित उत्तरदायित्वों और उनके सम्यक् निर्वहन के निमित्त अपने आवश्यक शक्तिसामर्थ्य की सीमाओं को देखते हुए सभा ने सर्वप्रथम मात्र अपनी स्पष्ट संमति ही दी, संपादन संबंधी दायित्व ग्रहण करना उसने स्वीकार नहीं किया।

परंतु पिछले कतिपय वर्षों में सभा और इंडियन प्रेस का पारस्परिक संबंध अत्यंत घनिष्ठ हो चुका था। अपने स्वल्प जीवनकाल में सभा ने साहित्य-जगत् में अपनी विशिष्ट और गंभीर कार्यपद्धति के कारण यथेष्ट ख्याति अर्जित कर ली थी और हिंदी-प्रेमी मात्र की प्रियपात्री हो चुकी थी। इंडियन प्रेस के दूरदर्शी और अनुभवी स्वामी यह भली भाँति जानते थे कि प्रस्तावित पत्रिका की सफलता के लिए सभा का पूरा पूरा सहयोग नितांत आवश्यक है। तत्कालीन पत्रजगत् में उँगलियों पर गिनी जाने योग्य जो कतिपय पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं उनमें उत्तरोत्तर विकसित होते हुए जनमन की तुष्टि करने योग्य सामग्री का संयोजन नहीं हो पा रहा था। अतएव सभा के इस पलायनवादी निश्चय से प्रेस के स्वामी हतोत्साह नहीं हुए। उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रखा। फलतः १३ नवंबर, १८९९ ई०

वाले सभा के साधारण अधिवेशन में, जिसका सभापतित्व स्व० श्री पं० सुदर्शनदासजी ने किया था, इस संबंध में निम्नलिखित निश्चय हुआ :

"(४) इंडियन प्रेस का १४ अक्टूबर का पत्र उपस्थित किया गया और निश्चय हुआ कि निम्नलिखित पाँच महाशयों के नाम संपादक-समिति बनाने के लिए लिख दिये जायँ :

१—बाबू श्यामसुंदरदास
२—बाबू राधाकृष्णदास
३—बाबू जगन्नाथदास
४—बाबू कार्तिकप्रसाद
५—पं० किशोरीलाल गोस्वामी

निश्चय होने के अनंतर उसकी पूर्ति में सभा पूरे दायित्व के साथ तत्काल जुट गई। आजकल, जबकि मुद्रणादि के साधन बहुत विकसित हो चुके हैं, इस प्रकार के निश्चयों को कार्यरूप में परिणत करने में महीनों लग जाते हैं। परंतु तत्कालीन परिस्थितियों में भी उपर्युक्त निश्चय के केवल १॥ मास बाद अर्थात् जनवरी, १९०० ई० में ही 'सरस्वती' का प्रथम अंक प्रकाशित हो गया। मुखपृष्ठ पर संपादक समिति के सदस्यों के नाम इस क्रम से नीचे बाईं ओर, रखे गये—(१) बा० कार्तिकप्रसाद खत्री, (२) पं० किशोरीलाल गोस्वामी, (३) बा० जगन्नाथदास, बी० ए०, (४) बा० राधाकृष्णदास, (५) बा० श्यामसुंदरदास, बी० ए०। इस नामावली के ठीक ऊपर, बड़े प्रशस्त रूप मे अंकित था :

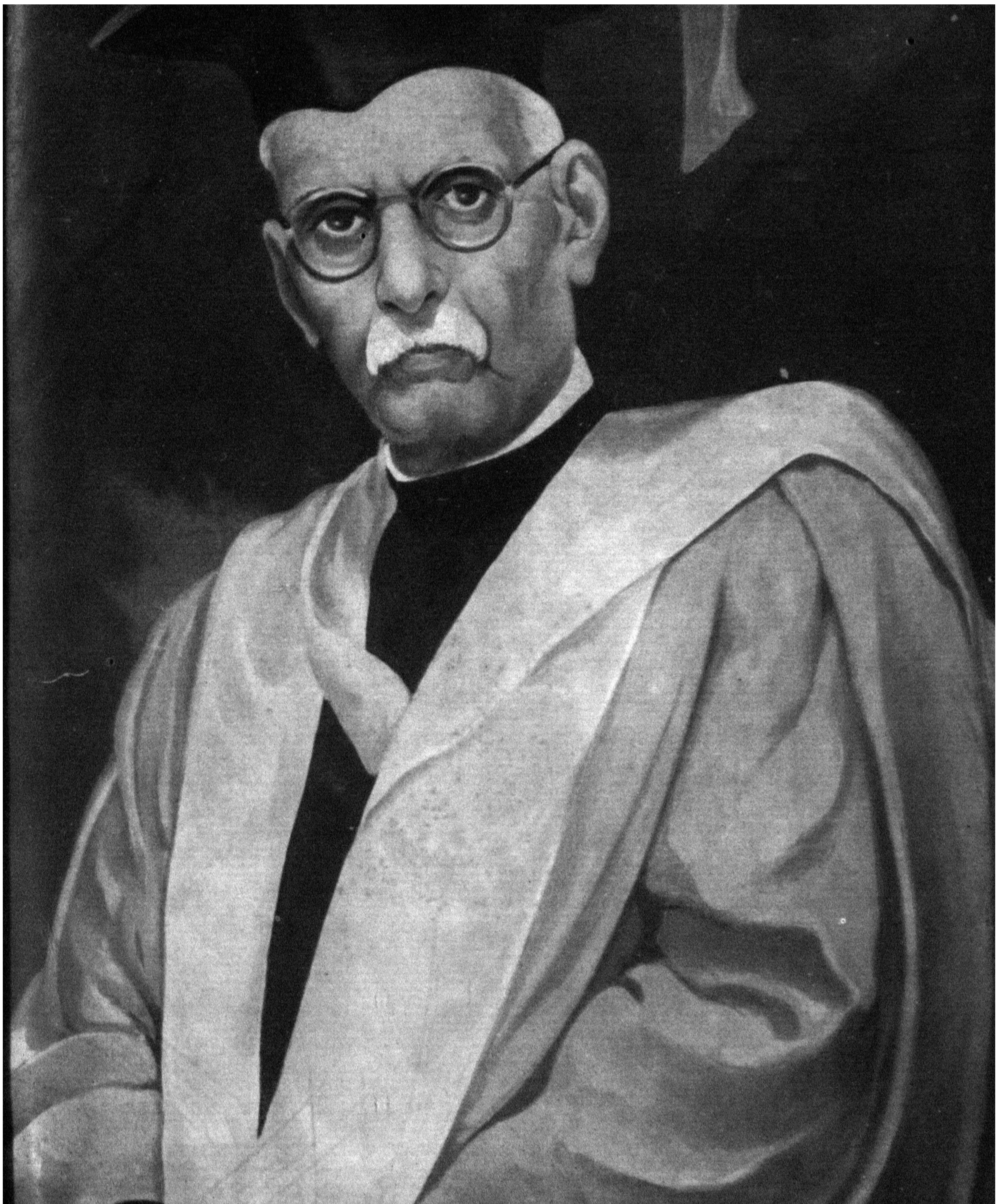
काशी
नागरीप्रचारिणी सभा
के अनुमोदन से
प्रतिष्ठित

तदनंतर नियमित रूप से यह पत्रिका प्रकाशित होती रही। एक वर्ष पूरा होने पर प्रथम वर्ष की १२वीं संख्या के अंत में जो प्रकाशकीय वक्तव्य पृ० ३९९ पर 'प्रकाशक का निवेदन' शीर्षक से दिया गया उससे स्पष्ट होता है कि आरंभ से ही 'सरस्वती' को ग्राहकों-पाठकों और लेखकों का यथोचित सहयोग मिलने लगा, यद्यपि "इसे नष्ट करने के लिए उतारू" कितने ही लोगों के "कटाक्षों की बज्र-वर्षा" भी होती रही। हिंदी की पत्रपत्रिकाओं पर शैशव-मरण का अभिशाप उन दिनों आजकल से भी अधिक प्रखर रूप में व्याप्त था। परंतु जैसे-जैसे 'सरस्वती' आगे बढ़ती गई, वैसे-वैसे यह आशंका भी निर्मूल होती रही।

'सरस्वती' के दूसरे भाग की प्रथम संख्या (जनवरी, सन् १९०१ ई०) से संपादन-संबंधी दायित्व संपादक-समिति के स्थान पर अकेले बाबू श्यामसुंदरदास पर आ गया, जिसका निर्वाह वे अगले वर्ष के अंत तक, अर्थात् दिसंबर, सन् १९०२ ई० तक करते रहे। संपादन विषयक इस परिवर्तन के अतिरिक्त पत्रिका की नीति-रीति वा उद्देश्यों में इस बीच कोई तात्विक परिवर्तन नहीं हुआ और वह यथापूर्व 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित' रूप में ही निकलती रही।

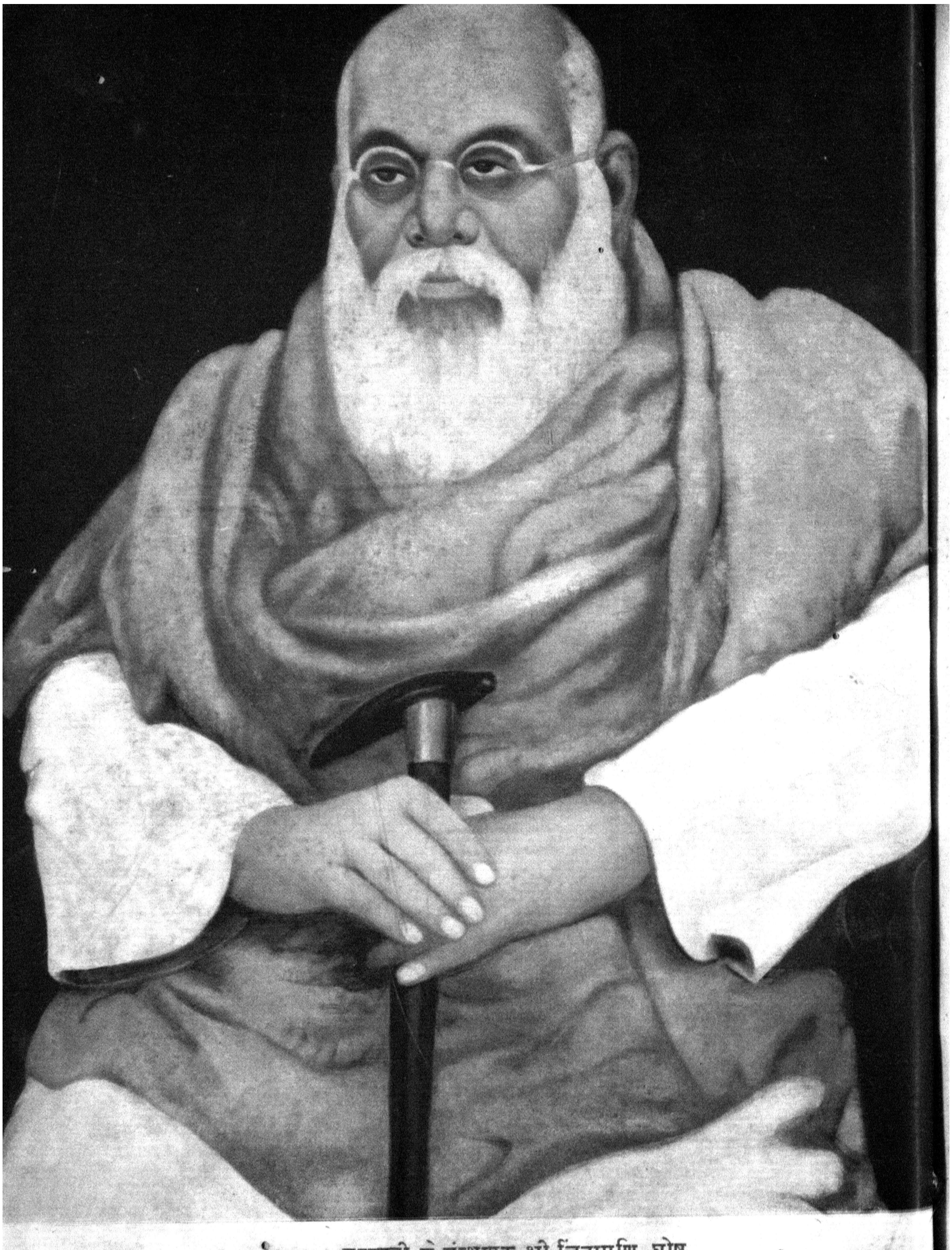
परंतु तृतीय वर्ष के उपरांत बाबू श्यामसुंदरदासजी यह दायित्व नहीं सँभाल सके। इसका मुख्य कारण उनका अन्यान्य अनिवार्य कार्यों में व्यस्त रहना ही था। अपने संपादकत्व में निकलनेवाले अंतिम अंक (दिसंबर, १९०२) के आरंभ में उन्होंने जो वक्तव्य 'विविध वार्ता' के अंतर्गत पृ० ३६१ पर प्रकाशित किया था वह निम्नलिखित है :

"इस मास की संख्या के साथ सरस्वती का तीसरा वर्ष पूरा होता है। पहले वर्ष से लेकर आज तक मेरा संबंध इस पत्रिका से घनिष्ठ बना रहा। पहिले वर्ष में एक समिति इस पत्रिका का संपादन करती रही और मैं भी उस समिति का सभासद रहा। दूसरे और तीसरे वर्ष में इसके संपादन का भार पूरा-पूरा मेरे ऊपर रहा। परंतु अब चौथे वर्ष के प्रारंभ से यह कार्य हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी के अधीन रहेगा। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हुआ कि मैं समय के अभाव से 'सरस्वती' के संपादन में इतना दत्तचित्त न रह सका जितना कि मुझे होना उचित था। इसलिए केवल नाम के लिए संपादक बना रहना मैंने उचित नहीं समझा। परंतु मैं अपने पाठकों और पत्रिका के लेखकों को विश्वास दिलाता हूँ कि यद्यपि आगामी संख्या से मैं इसका संपादक न रहूँगा, पर इस पत्रिका के साथ मेरी वैसी ही सहानुभूति बनी रहेगी जैसे अब तक रही, और मैं सदा इसकी उन्नति से प्रसन्न होऊँगा। अंत में मुझे अपने उन मित्रों से प्रार्थना करनी है जो लेखों द्वारा तीन वर्ष लों मेरी सहायता करते रहे। आशा है कि वे अगले वर्ष में भी इसी प्रकार सहायता करते रहेंगे। अब भविष्य में 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ सब लेख, परिवर्तन के संवादपत्र,



सरस्वती के प्रथम सम्पादक डा० श्यामसुंदरदास

(सरस्वती हीरक जयंती समारोह के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया चित्र) (चित्रकार—श्री देवकृष्ण जोशी)



सरस्वती के संस्थापक श्री चिंतामणि घोष

(सरस्वती हीरक जयंती समारोह के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया चित्र) (चित्रकार--श्री देवकृष्ण जोशी)

तथा समालोचनार्थ पुस्तकादि निम्नलिखित पते से भेजे जाने चाहिए––

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी,
संपादक 'सरस्वती',
झाँसी।

पत्रिका का प्रबंध तथा मूल्य संबंधी" पत्रव्यवहार पूर्ववत् प्रयाग के इंडियन प्रेस ही से रहेगा।"

इस प्रकार आरंभ के तीन वर्ष पर्यंत 'सरस्वती' का संपादन सभा के अनुमोदन से क्या उसके सर्वाधिक कार्यरत संस्थापक स्व० बाबू श्यामसुंदरदास द्वारा होता रहा। बाबू साहब के पृथक् हो जाने पर स्व० आचार्य पं० महावीर-प्रसादजी द्विवेदी के बलिष्ठ और सुदृढ़ कंधों पर इस पत्रिका का संपादन-भार आया जिन्होंने एक लंबी अवधि तक अत्यंत योग्यता और विद्वत्तापूर्ण ढंग से यह कार्य किया। स्व० द्विवेदीजी की दृष्टि कितनी पैनी थी, साहित्य में वे नियम और विधान के कितने पक्षपाती और अराजकता के कितने विरोधी थे, कितनों को उन्होंने साज-सँवारकर हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों की पंक्ति में आसीन किया, कितने नवीन लेखक तैयार किये, और इस प्रकार हिंदी साहित्य का सूत्र-संचालन करनेवाले युगविधायक बने रहे, इससे हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी भली भाँति अवगत है।

स्व० द्विवेदीजी के संपादकत्व में निकलनेवाली 'सरस्वती' से भी सन् १९०३ ई० से लेकर सन् १९०५ ई० तक, अर्थात् तीन वर्ष पर्यंत, सभा का 'अनुमोदन'-संबंध यथावत् स्थिर रहा। तदनंतर कतिपय ऐसे सैद्धांतिक प्रश्न बीच में उठ खड़े हुए जिनके कारण सभा को इस पत्रिका पर से अपना 'अनुमोदन' हटा लेना पड़ा। सन् १९०५ ई० में प्रकाशित सभा के १२वें वार्षिक विवरण में पृ० ३८ पर इस संबंध में निम्नांकित उल्लेख किया गया है :––

"मासिक पत्रों में अब सबसे श्रेष्ठ 'सरस्वती' है। यद्यपि कई कारणों से अब इस पत्रिका के साथ इस सभा का कोई संबंध नहीं है, पर यह सभा इस पत्रिका की उन्नति देखकर प्रसन्न होती है। 'सरस्वती' में सब प्रकार के लोगों की रुचि के अनुसार सरल भाषा में लेखों के रहने से इसका आदर दिनोंदिन बढ़ता जाता है। सभा को दुःख है कि 'सरस्वती' के प्रकाशक ने उसमें अपवादपूर्ण लेखों का रोकना उचित न जानकर सभा से अपना संबंध तोड़ना उचित समझा। परंतु सभा को विश्वास है कि इस पत्रिका द्वारा हिंदी का हित निरंतर साधन होता रहेगा।"

इस प्रकार इंडियन प्रेस द्वारा संकल्पित और प्रस्तावित 'सचित्र मासिक पत्र' 'सरस्वती' का प्रवर्तन तो नागरी-प्रचारिणी सभा ने किया ही, छः वर्षों तक उसके संपादन की व्यवस्था भी सभा के तत्त्वावधान में वा उसके अनुमोदन से होती रही; और जब सभा उससे पृथक् हुई तो उसे पत्र-जगत् के मूर्धन्य स्थान पर पहुँचाकर ही।

❋ ❋ ❋

# सरस्वती के ६० वर्ष

**श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी**

जनवरी सन् १९०० में सरस्वती का पहला अंक प्रकाशित हुआ। उस समय मैं ६ वर्ष का था। उसके १२ अंक निकल जाने के बाद मेरे पिता ने एक साथ वे १२ अंक मँगवाये। तब तक मुझे हिंदी का अक्षर-ज्ञान अच्छी तरह हो गया था। सरस्वती के वे अंक मेरे समान बालकों के लिए भी विशेष आकर्षक थे। सबसे अधिक आकर्षण सरस्वती में प्रकाशित चित्रों के प्रति था। तब से मैं सन् १९२० तक सरस्वती का सबसे बड़ा प्रेमी पाठक था।

हम लोगों की छात्रावस्था में हिंदी-साहित्य की उच्च शिक्षा दुर्लभ थी। सरस्वती से ही मैंने हिंदी-साहित्य का ज्ञान-प्राप्त किया। सबसे पहली कहानी जिसने मुझको मुग्ध किया, वह––'स्वर्ग की झलक' है। वह कहानी १९०३-४ में निकली थी। कितने ही विज्ञों ने हिंदी की प्रारंभिक––कहानियों में मिर्जापुर निवासी बाबू राम-प्रसन्न घोष की पुत्री बंग-महिला की 'दुलाईवाली' शीर्षक कहानी का उल्लेख अवश्य किया है, परंतु 'स्वर्ग की झलक' का

उल्लेख किसीने नहीं किया है। 'स्वर्ग की झलक' में कथा की वही कला विद्यमान् है जिसके लिए प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखक एण्डरसन विख्यात हैं। सरस्वती के प्रारंभिक अंकों में 'तुम हमारे कौन हो' शीर्षक देकर सूर्य की जो आत्मकथा प्रकाशित हुई थी वह भी हम लोगों के लिए कम मनोरंजक नहीं थी। बंग-महिला की 'दुलाईवाली' से कम आकर्षक उनका 'चंद्रदेव से मेरा निवेदन' शीर्षक लेख नहीं था। ज्यों-ज्यों मेरा ज्ञान बढ़ता गया त्यों-त्यों सरस्वती के लेखों के साथ-साथ कविताओं की ओर मेरा अनुराग बढ़ता गया। मैं नाथूराम शंकर शर्मा की कविताओं का बड़ा प्रेमी था। उनकी कितनी ही कविताएँ मैंने याद कर ली थीं। गुप्तजी की 'केशों की कथा' ने हम लोगों को विशेषरूप से मुग्ध किया। प्रेमचंदजी के हिंदी साहित्य में पदार्पण करने के पहले सरस्वती में बंगभाषा की श्रेष्ठ कहानियों के अनुवाद प्रकाशित हुआ करते थे। कथा का सच्चा रस हम लोगों ने उन्हीं कहानियों में पाया।

निबंध लेखकों में ज्वालादत्त शर्माजी ने उर्दू के कवियों पर जो परिचयात्मक निबंध लिखे वे हम लोगों के लिए बड़े प्रेरणाप्रद थे। देवनागरी-लिपि के संबंध में वार्हस्पत्य जी की लेख-माला भी कम मनोरंजक नहीं थी। स्वयं द्विवेदीजी ने समय-समय पर कुछ ऐसे लेख लिखे हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य में उस समय बड़ी हलचल पैदा कर दी। ऐसे लेखों को भी हम लोग विशेष चाव से पढ़ते थे। बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी ने भानुकवि के 'काव्य प्रभाकर' की बड़ी सुंदर आलोचना की थी। कामताप्रसादजी गुरु के आलोचनात्मक लेख भी हम लोगों के लिए आकर्षक थे। सच तो यह है कि छात्रावस्था में ही हम लोगों को साहित्य पर विशुद्ध अनुराग होता है। जब मैं बनारस के सेंट्रल हिंदू-कालेज में पढ़ता था तब पारसनाथसिंहजी मेरे एक सहपाठी थे। सन् १९१२ से लेकर सन् १९१६ तक हम लोग एक ही साथ बैठकर सरस्वती पढ़ा करते थे। वह दिन हम लोगों के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण था जब वज्र-पाणि के नाम से काबागूची की तिब्बत यात्रा पर पारसनाथ सिंहजी के लेख प्रकाशित हुए। उसके बाद मैंने भी सन् १९१५ 'में सोना निकालनेवाली चीटियाँ' नामक एक लेख लिखा। सरस्वती की तब ऐसी प्रतिष्ठा थी कि ऐसे ही दो-चार लेख, दो-तीन कहानियाँ और दो-चार कविताएँ लिखकर मैं तत्कालीन हिंदी-लेखकों की पंक्ति में स्थान पा गया और सन् १९२० में मुझे सरस्वती में काम करने का अवसर भी मिल गया।

सरस्वती के ६१ वर्ष हो गये। मैं भी अब ६७ वर्ष का हो गया। मुझमें अब जरा की जीर्णता के साथ वार्धक्य की शिथिलता आ गयी है, परंतु साहित्य-लक्ष्मी तो चिर-पुरातन होकर भी चिर-नवीन बनी रहती है। मैं वृद्ध हो गया हूँ, परंतु सरस्वती वृद्धा नहीं हुई है। उसमें तो चिरंतन तारुण्य की दीप्ति है। वह दीप्ति कभी भी निष्प्रभ नहीं हो सकती। साहित्य का क्षेत्र कभी भी रिक्त नहीं होता। एक जाता है और दूसरा उसका स्थान ग्रहण कर लेता है। साहित्य के क्षेत्र में सदैव तारुण्य की स्फूर्ति विद्यमान रहती है।

यह सच है कि हिंदी साहित्य में कितने ही पत्र प्रकाशित हुए और वे १०-१५ वर्षों से अधिक नहीं चल सके। सरस्वती बराबर ६१ वर्षों तक प्रकाशित होती रही। ऐसा कभी भी अवसर नहीं आया कि उसका कोई अंक रुका। सरस्वती के संचालकों के विशुद्ध साहित्य प्रेम के कारण ही सरस्वती का प्रकाशन बराबर होता रहा। ग्राहकों की चिंता उन्होंने कभी नहीं की। एक बार स्वर्गीय पटलबाबू ने मुझसे कहा था--'चाहे सरस्वती का एक भी ग्राहक न रहे; सरस्वती बराबर निकलती रहेगी।' इसमें संदेह नहीं कि उन्हींके हिंदी-प्रेम के कारण सरस्वती का यह ऐतिहासिक महत्त्व है। सरस्वती ने आधुनिक हिंदी-साहित्य का निर्माण किया है। सरस्वती ने जनता में आधुनिक नवयुग की चेतना उत्पन्न की है। मेरे समान पाठकों के लिए सरस्वती के सभी अंक चिरंतन आनंद के साधन हैं।

❀ ❀ ❀

# सरस्वती के इतिहास का सिंहावलोकन

पं० देवीदत्त शुक्ल

हिन्दी की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "सरस्वती" को निकलते हुए ६० वर्ष पूरे हो गये। अठारह करोड़ हिन्दी-भाषी जनता के बीच यही एक मासिक पत्रिका निकली, जो गौरव के साथ इतने लम्बे समय तक अपने कर्त्तव्य का दृढ़ता से पालन करती रही। परन्तु यह बात विशाल जनसंख्या-वाले हिन्दी-भाषियों के लिए गौरव की नहीं है। इसका गौरव तो उन महान् हिन्दी-प्रेमी तथा देशभक्त स्वर्गीय चिन्तामणि घोष को है, जिन्होंने प्रयाग में इण्डियन प्रेस को स्थापित कर हिन्दी की सेवा करने का व्रत ग्रहण किया था और काशी की नागरीप्रचारिणी सभा से "सरस्वती" के निकलने के प्रस्ताव को स्वीकार कराकर उसके प्रकाशन और संचालन का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर उसका प्रकाशन घाटा सहकर सफलता के साथ किया; साथ ही अपने सुपुत्रों को भी आदेश कर गये कि "सरस्वती" बराबर निकलती रहे।

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने "सरस्वती" के सम्बन्ध में केवल इतनी ही जिम्मेदारी ली थी कि वह प्रतिमास "सरस्वती" की प्रेस-कापी तैयार कर दिया करेगी। सभा ने इस कार्य के सम्पादन के लिए हिन्दी के पाँच प्रसिद्ध सुलेखकों की एक समिति बना दी थी। एक वर्ष उस समिति ने "सरस्वती" के सम्पादन का कार्य किया। परन्तु इसके बाद वह भंग हो गई। उस समय उक्त समिति के एक सदस्य बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए० ने "सरस्वती" के सम्पादन का भार अपने ऊपर ले लिया। इन्होंने "सरस्वती" में सामयिकता लाने के लिए उसके लेख-संचयन आदि में कुछ आवश्यक परिवर्तन किये। परंतु दो साल के अन्त होते-होते इन्होंने भी जवाब दे दिया। इण्डियन प्रेस के स्वामी इस परिस्थिति से जरा भी चिंतित नहीं हुए। उन्होंने "सरस्वती" का सम्पादन करने के लिए उस समय के कुछ इने-गिने प्रसिद्ध लेखकों में से पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी को चुना।

घोष बाबू ने जब द्विवेदीजी को इस सम्बन्ध में लिखा, तब उन्होंने घोष बाबू के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। द्विवेदीजी उस समय झाँसी में रेलवे के ट्रैफिक सुपरिंटेंडेंट के दफ्तर में हेडक्लर्क थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इसके कुछ दिन पहले इन्हीं द्विवेदीजी ने इण्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशित हिन्दी की रीडरों की कड़ी आलोचना लिखकर उसे पुस्तकरूप में छपवाया था। उस आलोचना को पढ़कर घोष बाबू द्विवेदीजी से अप्रसन्न होने के बजाय उलटा उनकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो गये और जब अवसर आया, तब उन्होंने द्विवेदीजी को "सरस्वती" का सम्पादक सम्मान के साथ बनाया। यह उस समय की बात है जब हिन्दी के विशाल क्षेत्र में सुलेखकों का ही नहीं, पाठकों तक का भी घोर अभाव था। परन्तु ऐसे दुष्काल में भी मनस्वी बाबू चिन्तामणि घोष "सरस्वती" के प्रकाशन के महत् सत्कार्य में बड़े उत्साह के साथ डटे रहे। ऐसे गुणज्ञ, कर्मठ स्वामी को पाकर द्विवेदीजी ने "सरस्वती" के सम्पादन का कार्य-भार बड़े उत्साह के साथ सँभाला और उसे एक लोकोपयोगी पत्रिका बनाने की रूपरेखा तैयार की।

उस समय देश की उन्नत भाषाओं में जो उच्च कोटि के मासिक पत्र निकल रहे थे, उन्हींके अनुकरण पर द्विवेदीजी ने "सरस्वती" की रूपरेखा में आवश्यक फेर-फार करके उसे समलंकृत किया। अब वह एक वास्तविक रूप में सामयिक पत्रिका बन चली। उपयोगी नाना विषयों से उसका कलेवर सजने लगा। निःसन्देह प्रारम्भ में उस समय के प्रसिद्ध हिन्दी-लेखकों का सहयोग "सरस्वती" को प्राप्त नहीं हो सका। परन्तु कुछ समय के बाद यह कठिनाई भी दूर हो गयी। कालेज में पढ़नेवाले पण्डित वेंकटेश-नारायण तिवारी जैसे कुछ नवयुवक हिन्दी-प्रेमियों ने उस समय द्विवेदीजी की अच्छी सहायता की।

"सरस्वती" का कार्यभार ग्रहण करने पर द्विवेदीजी ने अपने सामने दो उद्देश्य रखे थे—एक तो यह कि शुद्ध भाषा लिखी जाय और दूसरा यह कि गद्य-पद्य की भाषा एक ही हो। पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने "हिन्दी भाषा और व्याकरण" शीर्षक का एक लेख "सरस्वती" में छापा था। इस लेख में उस समय के सभी लेखकों के अवतरण देकर उन्होंने यह सिद्ध किया था कि "हिन्दी-लेखकों की लेख-शैली में एकरूपता नहीं है। तथा

उनमें व्याकरण की भूलें भी हैं। यह न होना चाहिए। भाषा की अनस्थिरता दूर होनी चाहिए।" यह लेख कुछ लोगों को ठीक नहीं जँचा। कलकत्ते के "भारतमित्र" के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने आत्माराम के नाम से उस लेख का कड़ा विरोध किया, जिसका खण्डन वहींके पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र ने बड़े उत्तम ढंग से किया था। इसके बाद द्विवेदीजी ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'खोज की रिपोर्ट' की समालोचना "सरस्वती" में छापी। इस आलोचना से सभा असन्तुष्ट हो गयी। "सरस्वती" के मुखपृष्ठ पर "काशी की नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदित"—यह वाक्यांश छपा करता था। सभा ने इण्डियन प्रेस के स्वामी को लिखा कि चूँकि "सरस्वती" में सभा की खोज की रिपोर्ट की अनुचित आलोचना छपी है, अतएव "सरस्वती" के मुखपृष्ठ पर जो सभा द्वारा 'अनुमोदित' वाक्यांश छपा करता है, वह अब न छपना चाहिए। इस विवाद में प्रेस-स्वामी ने द्विवेदीजी का ही साथ दिया और सभा के अनुमोदन का अन्त हो गया। इन संघर्षों से "सरस्वती" की कीर्ति ही बढ़ी। उसकी ओर शिक्षित जनों का ध्यान आकृष्ट हुआ। उसमें रोचक, मनोरंजक तथा उपादेय पाठ्यसामग्री का समावेश बढ़ता ही गया। उसकी आकार-वृद्धि भी हुई। राजा रविवर्मा के सुन्दर चित्र प्रतिमास दिये जाने लगे। प्रसिद्ध विद्वानों, वैज्ञानिकों, देशभक्तों के जीवनचरित्र, प्रसिद्ध नगरों-देशान्तरों की, महत्त्व के स्थानों की यात्राओं के लेखों से अलंकृत होकर वह प्रतिमास निकलने लगी। पं० नाथूराम शर्मा "शंकर", बाबू देवीप्रसाद "पूर्ण", पं० गिरधर शर्मा "नवरत्न", बाबू मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों की खड़ी बोली में कविताएँ धड़ल्ले से प्रकाशित होने लगीं। गद्य के लेख शुद्ध तथा सरल परिमार्जित भाषा में निकलने लगे।

द्विवेदीजी का परिश्रम देखकर प्रेसस्वामी ने उनके लिए एक सहायक की नियुक्ति कर दी। कानपुर के पं० उदयनारायण वाजपेयी इस पद पर नियुक्त किये गये थे। यही नहीं, उन्होंने लेखकों को यथासंभव पारिश्रमिक देने की भी व्यवस्था कर दी। सन् १९०९ तक पहुँचते-पहुँचते "सरस्वती" ने महत्त्व का रूप धारण कर लिया था और वह हिन्दी की एक उत्कृष्ट मासिक पत्रिका बन गयी थी। परन्तु इसके लिए द्विवेदीजी को बहुत भारी परिश्रम करना पड़ा था। फलतः उन्हें उन्निद्र रोग हो गया। अतएव लाचार होकर उन्हें एक वर्ष की छुट्टी लेनी पड़ी। उनके इस अवकाशकाल में "सरस्वती" का सम्पादन उनके मित्र पं० देवीप्रसाद शुक्ल बी० ए० ने किया था। इन्हींके समय में पं० पद्मसिंह शर्मा की लिखी हुई "सतसई संहार" नामक लेखमाला निकली थी। इसके अतिरिक्त हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों के सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं के लेख निकले थे, जो बाद को "हिन्दी नवरत्न" के नाम से पुस्तकरूप में प्रकाशित हुए थे।

साल भर के विश्राम के बाद द्विवेदीजी ने "सरस्वती" के सम्पादन का भार फिर ग्रहण किया। उन्होंने "कालिदास की निरंकुशता" शीर्षक अपना प्रसिद्ध निबन्ध "सरस्वती" में छापा। इसकी आलोचना "भारतमित्र" में पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने 'मनसाराम' के नाम से छपवाई थी। मनसाराम की इस आलोचना का उत्तर काशी के "इन्दु" में अजमेर के कदाचित् पं० शिवदत्त शास्त्री ने बड़े पाण्डित्यपूर्ण ढंग से दिया था। सन् १९१३ तक "सरस्वती" का आकार-प्रकार इतना बढ़ गया था कि साल भर के उसके अंकों की जिल्द बँधवानी बोझिल-सा प्रतीत होने लगा। अतएव छः छः महीने से दो खण्डों में उसकी जिल्दें बनने लगीं। सन् १९११ से १९१७ तक द्विवेदीजी ने "सरस्वती" का सम्पादन पहले की अपेक्षा और भी उत्तम ढंग से किया। उन्हें हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों और कवियों का सहयोग प्राप्त हो गया था। इस काल में 'हिन्दी नवरत्न' की समालोचना, रामचरितमानस की समालोचना आदि आदि महत्त्व के लेख छपे थे। पं० विश्वम्भरनाथ कौशिक, मुंशी प्रेमचन्द, पं० ज्वालादत्त शर्मा आदि प्रसिद्ध लेखकों की कहानियाँ छपीं। पं० गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही", ठा० गोपालशरणसिंह जैसे कवियों की कविताएँ छपीं। पं० हरिभाऊ उपाध्याय को इस अवधि में प्रेस ने "सरस्वती" के सम्पादन में सहायता करने को नियुक्त किया था। "सरस्वती" की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर मर्यादा, कमला, इन्दु आदि जैसी कई सुंदर-सुंदर मासिक पत्रिकाएँ निकलीं। परन्तु वे अधिक समय तक चल न सकीं। "सरस्वती" की इतनी मर्यादा बढ़ चुकी थी कि उसमें जिस किसीका लेख या कविता छप जाती थी, वह यही समझता था कि उसे लेखक या कवि होने का प्रमाण-पत्र मिल गया है।

सन् १९२० में द्विवेदीजी का स्वास्थ्य फिर गिर गया और उन्हें फिर छुट्टी लेनी पड़ी। पं० देवीप्रसाद शुक्ल इस बार भी उसके सम्पादक बनाये गये। परन्तु "सरस्वती" का सम्पादन ठीक ढंग से नहीं हो सका। यह बात चिन्तामणि बाबू कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने द्विवेदीजी को लिखा कि वे पुनः "सरस्वती" का कार्यभार ग्रहण कर अपने स्थान में किसी उपयुक्त व्यक्ति को सम्पादक बनाकर अवकाश ग्रहण कर लें। फलतः स्वस्थ न होते हुए भी द्विवेदीजी को पुनः "सरस्वती" का कार्यभार ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी को "सरस्वती" का सम्पादक बनाने को चुना। बख्शीजी यथासमय आ गये और द्विवेदीजी के साथ रहकर उन्होंने "सरस्वती" का सम्पादन कार्य किया।

सन् १९२० के अन्त में जब द्विवेदीजी अवकाश ग्रहण करने लगे, तब उन्होंने बख्शीजी को दो लेख दिये थे और कहा था कि "बाबू श्यामसुंदरदास ने 'सरस्वती' से अलग होने के समय ये दोनों लेख मुझे दिये थे। परन्तु मैं इनको "सरस्वती" में नहीं छाप सका।"

सन् १९२१ से बख्शीजी ने "सरस्वती" का सम्पादन-भार अपने ऊपर लिया। सन् १९२५ तक उन्होंने उसका सम्पादन बहुत ही अधिक सुरुचिपूर्ण ढंग से किया। वे साहित्यिक समीक्षक थे, जिसका "सरस्वती" के इन वर्षों के अंकों में पूर्ण दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त देश-विदेश तथा लोक-वर्णन, पुरातत्त्वादि सम्बन्धी लेखों से तथा सुन्दर चित्रों तथा सचित्र लेखों से उन्होंने "सरस्वती" की गौरव-वृद्धि करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। उनके इन दिनों के सम्पादन-कार्य में "सरस्वती" के मैनेजर बाबू हरिकेशव घोष ने बड़े अनुराग के साथ सहयोग किया था।

परन्तु सन् १९२५ के अन्त में बख्शीजी "सरस्वती" का कार्य छोड़कर अपने घर खैरागढ़ चले गये। तब "सरस्वती" का सम्पादन-भार मुझे सौंपा गया। मैं उस समय "सरस्वती" का सहकारी-सम्पादक था। सन् १९२६ में इण्डियन प्रेस के मैनेजर बाबू हरिकेशव घोष ने बड़ी रुचि के साथ उसके सम्पादन के कार्य की देख-भाल की। उन्होंने उसका आमूल परिवर्तन कर दिया। "सरस्वती" के मुखपृष्ठ पर सरस्वती के चित्र के स्थान में एक नया भावपूर्ण चित्र दिया। पाठ्य-सामग्री में भी लोकरुचि को ध्यान में रखकर काफी अधिक परिवर्तन करवा दिया। मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास की समालोचना पं० अवध उपाध्याय ने तर्कपूर्ण ढंग से की थी। वह इसी वर्ष छपी थी। १९२७ के वर्षांक में देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्य-सम्बन्धी लेख इस दृष्टिकोण से छापे गये कि उनकी तुलना हिन्दीवाले अपने साहित्य से कर सकें। इस वर्ष अप्रैल में बख्शीजी फिर आ गए और उन्होंने पहले की भाँति "सरस्वती" के सम्पादन का कार्य उत्साह के साथ प्रारम्भ कर दिया। बख्शीजी ने वर्ष के अन्त में "सरस्वती" का एक अनूठा वार्षिकांक निकाला था। यह विशेषांक चुनी हुई कहानियों का था। पं० ठाकुरदत्त मिश्र प्रेस के साहित्य-विभाग में आ गये थे। वार्षिकांक के सम्पादन में मिश्रजी ने अच्छा परिश्रम किया था। सन् १९२८ में बख्शीजी ने "सरस्वती" का सम्पादन बड़ी लगन और परिश्रम के साथ किया था। इस बार अपनी शक्तिभर उन्होंने "सरस्वती" को उच्च-स्तर पर ले जाने का प्रयत्न किया था और उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली थी। परन्तु वे फिर छुट्टी लेकर खैरागढ़ चले गये। और जब लौटे, तब कुछ ही दिनों के बाद पुनः अपने घर चले गये।

सन् १९२९ में बाबू हरिकेशव घोष ने "सरस्वती" के आकार और रूपरेखा में आकर्षक परिवर्तन कर दिया। पाठ्य-सामग्री को भी अधिक लोकप्रिय बनाने की सुविधा कर दी। अब वे "सरस्वती" की देखभाल करने में अधिक दत्तचित्त रहते थे। सन् १९३३ तक पं० ठाकुर-दत्त मिश्र ने "सरस्वती" के सम्पादन-कार्य में बड़ी सहायता की। सन् १९३४ में मैनेजर साहब ने "बालसखा" के सम्पादक ठा० श्रीनाथसिंह को "सरस्वती" का सम्पादक नियुक्त किया और एक ऐसी योजना बना दी, जिसके अनुसार "सरस्वती" में श्रेष्ठ लेखकों तथा प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियों के लेख छापे जाया करें। इसी काल में भाई परमानन्द, पं० जवाहरलाल नेहरू, सन्त निहाल सिंह, पं० वेंकटेशनारायण तिवारी आदि आदि महानुभावों के लेख "सरस्वती" में निकले थे। परन्तु १९३५ के बाद ठा० श्रीनाथसिंह "सरस्वती" का काम छोड़कर "हल" के सम्पादक हो गये। तब "सरस्वती" के संयुक्त-सम्पादक पं० उमेशचन्द्र मिश्र बनाये गये। मिश्र जी विद्वान् तो थे ही, हिन्दी के बड़े प्रेमी भी थे। उन्होंने सन् १९४५

तक "सरस्वती" के सम्पादन का कार्य बड़ी लगन और योग्यता के साथ किया।

सन् १९४६ में मेरी दृष्टिशक्ति के नष्ट हो जाने पर "सरस्वती" के सम्पादन का भार उन्होंने अपने ऊपर लिया और निःसन्देह उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ उसे सम्पन्न भी किया। कुछ ही दिनों के बाद उनका स्वास्थ्य गिर गया और अन्त में वे स्वर्ग सिधार गये। अब बख्शीजी को फिर "सरस्वती" के सम्पादन का भार अपने ऊपर लेना पड़ा। उनकी सहायता के लिए पं० देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त" नियुक्त हुए।

इन दिनों बाबू हरिकेशव घोष का स्वास्थ्य बराबर गिरता जा रहा था, तो भी वे प्रेस के कार्य में निरन्तर लगे रहते थे। अन्त में उनके आत्मबल ने उनका साथ छोड़ दिया और वे सन् १९५३ में स्वर्गवासी हो गये। ऐसी परिस्थिति में उनके छोटे भाई बाबू हरिप्रसन्न घोष ने बहुत ही अधिक धैर्य का परिचय दिया। उन्होंने सारे कारबार को सँभाल लिया। साथ ही "सरस्वती" का सम्पादन सुचारुरूप से हो, इसके लिए उन्होंने पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी को चुना। इससे बढ़कर दूसरा चुनाव नहीं हो सकता था। चतुर्वेदीजी इण्डियन प्रेस के पुराने हितैषी तो थे ही, हिन्दी के सुकवि-सुलेखक तथा हिन्दी के नेताओं में से थे। शिक्षा-विभाग के उच्च पद से अवकाश ग्रहण कर चुके थे। उन्होंने सहर्ष "सरस्वती" के सम्पादन-भार को ग्रहण किया और उसे "सरस्वती" की परम्परा के अनुसार आधुनिक रूप प्रदान किया।

सन् १९६० में "सरस्वती" के साठ वर्ष पूरे हो गये थे। इस पर चतुर्वेदीजी ने "सरस्वती" का एक महत्त्वपूर्ण हीरक-जयन्ती अंक निकालने की योजना बनाई। इस विशिष्ट अंक में "सरस्वती" के प्रतिवर्ष की जिल्दों से इस ढंग और क्रम से कविताओं, लेखों, कहानियों, नाटकों आदि का संकलन किया गया है कि उनका अध्ययन करने से हिन्दी के क्रमिक विकास का बोध हो जाता है। निःसन्देह "सरस्वती" का यह विशेषांक सभी दृष्टियों से बड़े महत्त्व का है। ऐसा सुंदर विशेषांक निकालने के लिए इण्डियन प्रेस के स्वामी तथा "सरस्वती" के सम्पादक हिन्दी-प्रेमियों के सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अपने जीवन के लम्बे समय में "सरस्वती" को नानाप्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, जिन्हें वह धीरतापूर्वक पार करती चली आई। "सरस्वती" ने सदैव सत्य के पक्ष का समर्थन किया। दलगत-वादों में उसने कभी भाग नहीं लिया। जो बात वास्तव में थी, उसको उसने सदैव दृढ़ता और स्वतंत्रतापूर्वक कहा। अपनी इस स्वतंत्र नीति के कारण हिन्दी के कतिपय महारथी उससे बराबर असन्तुष्ट रहे, परन्तु "सरस्वती" निर्भय होकर अपनी निर्धारित नीति के अनुसार हिन्दी की सेवा का कार्य करती रही। यही मूल कारण है कि "सरस्वती" को हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में गौरव प्राप्त हुआ और वह सर्वप्रिय हो सकी।

❀ ❀ ❀

# 'सरस्वती' तथा अमर शहीद श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी

प्रो० लक्ष्मीनारायण दुबे

हिन्दी-साहित्य के युग-सृजन, पत्रकारिता तथा विशिष्ट लेखक-मण्डल के निर्माण में, 'सरस्वती' ने जो ऐतिहासिक कृत्य सम्पन्न किया है, उसकी कहानी अब इतिहास के तथ्यों की मार्मिक अभिव्यंजना बन चुकी है। हमारी वर्तमान शताब्दी, जो कि विविध विषयोन्मुख प्रगति की जननी है, के समारम्भ के साथ ही, सन् १९०० में, इस युग-निर्मात्री पत्रिका का श्रीगणेश हुआ और जनवरी, १९०३ से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादक के वरेण्य पद पर आसीन होने के पश्चात्, इसने एक ऐसे चिरन्तन साहित्यिक स्रोत का रूप ग्रहण करना प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप वह भारत-भारती की जाह्नवी बन गयी। 'सरस्वती', जो कि वीणापाणि की

वाहिका है, के मानसरोवर में पुनीत अवगाहन कर, जिन साहित्यकारों ने अपने को अन्तर्चक्षु तथा ख्याति सम्पन्न बनाया, उनमें हुतात्मा श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का भी प्रधान स्थान है। पत्रकारिता की पावनता, विमलता तथा तेजस्विता का स्रोत गणेशजी को इसी वन्दनीय कुण्ड से ही प्राप्त हुआ। गोस्वामी जी की यह पंक्ति उन पर भी चरितार्थ की जा सकती है :—

"अस मानस मानस चख चाही;
भई कवि बुद्धि विमल अवगाही।"

युगप्रवर्तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती', दोनों, दो शरीर और एक आत्मा थे। कल्याणी गंगा को अवनि पर लाकर सम्राट् भगीरथ ने उसे 'भागीरथी' बना दिया, उसी प्रकार द्विवेदीजी ने भी 'सरस्वती' के युगान्तकारी एवं प्रभावोत्पादक नाद-सौन्दर्य से हिन्दी-संसार को विमोहित कर लिया। सन् १९२० तक द्विवेदीजी का कृतित्व तथा मार्गदर्शन राग भैरवी के रूप में समाहृत रहा। सन् १९०५ से आचार्य द्विवेदीजी ने झाँसी को तिलांजलि देकर, अपना कर्मस्थल उस कानपुर को बनाया जिसने ऐसा 'प्राणों का बलिदानी' नेता उत्पन्न किया जिसके विषय में विश्ववंद्य बापू ने लिखा था कि हम थोड़ी देर के लिए मान सकते हैं कि "उसकी परम्परा समाप्त हो गई, लेकिन वह इतिहास में अमर हो गया, उसकी अहिंसा सिद्ध अहिंसा थी। उसीकी तरह कुल्हाड़ी के प्रहार सहते हुए मैं शांतिपूर्वक मरूँ।"

इसी कानपुर नगरी में आचार्य द्विवेदीजी को गणेशजी जैसे महान् शिष्य की प्राप्ति हुई। गणेशजी को प्रखरता, निर्भीकता, न्यायप्रियता तथा प्रज्ञा के साथ, 'सरस्वती' की सरिता-सुषमा भी अपनी किशोरावस्था में प्राप्त हो गयी थी। उन्हें अपनी बाल्यावस्था से ही पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने का शौक था। उच्च माध्यमिक शाला छोड़ने के पूर्व ही, उन्होंने 'सरस्वती' की समग्र संचिकाओं का अध्ययन कर लिया था। यह स्वाध्याय उनके जीवन का शाश्वत संस्कार बन गया जिससे पत्रकारिता के राजनीतिक स्वरूप की नूतन तथा अभूतपूर्व धारा प्रवहमान हो उठी। आचार्य द्विवेदीजी के सान्निध्य का सुख कानपुर में पाकर, विद्यार्थीजी की विद्या सहस्र दल की भाँति प्रस्फुटित हो पड़ी। 'कर्मयोगी' तथा उर्दू 'स्वराज्य' के पत्रकारिता जीवन के अनुभव को 'सरस्वती' में, परिपक्वता तथा तारुण्य प्राप्त होने लगा। आचार्य द्विवेदीजी के सौर-मण्डल के गणेशजी भी एक जाज्वल्यमान नक्षत्र हो गये। द्विवेदीजी ने गणेशजी की प्रतिभा का मूल्यांकन कर, उन्हें अपने पास 'सरस्वती' के सम्पादकीय-विभाग में सहायक के रूप में रख लिया। विद्यार्थीजी २ नवम्बर, १९११ ई० से पच्चीस रुपये मासिक वृत्ति पर सम्पादन-कार्य में योग-दान देने लगे।

पत्रकार-कला की दीक्षा गणेशजी ने अपने गुरुदेव के श्रीचरणों में बैठकर, 'सरस्वती' की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर, ग्रहण की। गणेशजी ने इस पत्रिका में एक वर्ष से अधिक कार्य किया। यह वर्ष उनके जीवन का पाथेय बन गया। आचार्य द्विवेदीजी ने उनके विषय में लिखा है कि "जब तक मेरे पास रहे, गणेशजी ने बड़ी मुस्तैदी और बड़े परिश्रम से काम किया। रोज दो मील दूर शहर से जूही जाते और शाम को लौटते। उनकी शालीनता, सुजनता, परिश्रमशीलता और ज्ञानार्जन की सदिच्छा ने मुझे मुग्ध कर लिया। उधर वे मुझे शिक्षक या गुरु मानते थे, इधर मैं स्वयं ही कितनी बातों में उन्हें अपना गुरु समझता था। धीरे-धीरे वह मेरे कुटुम्बी से हो गये। कभी स्वप्न में भी किसी भी विषय में, आपसी मत-विरोध या खटपट नहीं हुई। गणेश मेरे खानगी कामों तक में मेरी मदद करते रहे। हिन्दी लिखना उन्होंने खूब सीखा। मैं चाहता था कि वह कुछ संस्कृत सीख लें। पर उनका झुकाव राजनीतिक शिक्षा ही की ओर अधिक था। अतएव मैंने उन पर दबाव नहीं डाला। उन्हें पढ़ने का बड़ा शौक था। जुही आते-जाते राह में भी कभी-कभी वह अखबार या पुस्तक पढ़ते चले जाते थे।" गणेशजी का यही व्यक्तित्व कवियों का प्रेरणा स्रोत बन गया और इसीलिए कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्तकी नाट्यकृति 'अनघ' के चरित्र-नायक मघ के रूप में मूर्तिमंत हो उठा। गणेशजी के स्वभाव की ध्रुवता गुप्तजी की इस पंक्ति में मुखर हो पड़ी है :—

"क्षमा चाहनेवाला काम, कभी नहीं करता है राम।"

अपने गुरुदेव से गणेशजी राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति के विषय में, एक पग आगे थे और इसीलिए उन्होंने 'प्रताप' के सन् १९२० के विशेषांक में गुप्तजी की दक्षिण-आफ्रिका विषयक वह कविता प्रकाशित की थी, जिसे द्विवेदीजी 'सरस्वती' में मुद्रित नहीं कर पा रहे थे। गणेशजी के इसी राष्ट्रोपासक रूप का स्तवन श्री माखनलाल चतुर्वेदी

'एक भारतीय आत्मा' की अभिनन्दनीय वाणी ने किया है :—

"आत्मदेव ! प्यारी हथकड़ियाँ
और बेड़ियाँ दें परितोष,
उतनी ही आदरणीया हैं,
जितना वह जय-जय का घोष।
तू सेवक है, सेवाव्रत है,
तेरा जरा कुसूर नहीं;
'शली—वह ईसा की शोभा'
वह विजयी दिन दूर नहीं।"

'सरस्वती' से गणेशजी 'अभ्युदय' में चले गये। इसका कारण, जैसा कि आचार्य द्विवेदीजी ने भी संकेत किया है, उनकी राजनीति प्रधान अभिरुचि थी। 'अभ्युदय' में गणेशजी ने २९ दिसम्बर, १९१२ ई० से कार्य-भार ग्रहण किया। गणेशजी ने यह व्यवस्था चुपचाप की थी। इस पर द्विवेदीजी ने उन्हें मीठी फटकार भी बतलाई थी। इस भूल पर गणेशजी को बड़ा पश्चात्ताप रहा। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ और स्नेहिल था कि एक दूसरे के आजीवन अनुरक्त बने रहे। श्री देवव्रत शास्त्री ने लिखा है कि द्विवेदीजी को विद्यार्थीजी का इतना ख्याल था कि जिन दिनों 'प्रताप' पर रायबरेलीवाला प्रसिद्ध मुकदमा चल रहा था तो वे महाशय काशीनाथजी और पण्डित बालकृष्ण शर्मा को अपने साथ लेकर सर राजा रामपालसिंह के यहाँ गये थे कि वह बीच में पड़कर मुकदमे में सुलह करा दें।

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पादकत्व में २३ नवम्बर, १९२० ई० को दैनिक 'प्रताप' के श्रीगणेश के समय आचार्य द्विवेदीजी ने अपने १६ नवम्बर, सन् १९२० के पत्र में, मंगल-कामना के रूप में, यह संस्कृत श्लोक लिख भेजा था :—

"विघ्नबाधाभयैर्मुक्ताः सर्वैश्वर्यसमन्विताः।
भवन्तु त्वत्प्रयत्नेन सर्वे भारतवासिनः ॥"

लेखक के रूप में भी गणेशजी के 'सरस्वती' से पुराने सम्बन्ध रहे। जब वे स्कूल के विद्यार्थी थे, तब से ही उनके दो-एक लेख इस पत्रिका में निकल चुके थे। अपने प्रकृत नाम के अतिरिक्त उन्होंने 'सरस्वती' आदि पत्रों में, अपने गुरुदेव के छद्म नाम लेखन की परिपाटी को अपनाते हुए, 'गजेन्द्र', 'श्रीकांत एम० ए०' आदि उपनामों से कई लेख लिखे। डॉ० उदयभानुसिंह ने अपने शोध-प्रबंध 'महावीर-प्रसाद द्विवेदी और उनका युग' में निरूपित किया है कि आचार्य द्विवेदीजी ने गणेशजी के लेखों को काट-छाँटकर, उन्हें परिमार्जित तथा परिवर्द्धित कर पठनीय तथा सुग्राह्य बना दिया था। द्विवेदीजी ने गणेशजी के निबंधों की स्वर-गत, व्यंजनगत, अव्यय, लिंग, कारक, समास, उपसर्ग-/प्रत्यय, मुहावरे आदि सम्बन्धी अशुद्धियों को संशोधित किया। मूल प्रतियों की अमूल्य निधि काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के कला-भवन में राष्ट्र-भारती की धरोहर बन गई है।

इस प्रकार 'महावीर का प्रसाद', 'सरस्वती' की सात्विक प्रश्रय-स्थली में, गणेशजी को राष्ट्र-गीतों का गेय पुरुष बना गया। गुप्तजी ने उचित ही कहा है :—

"करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद ?"

❀ ❀ ❀

# हिन्दी भाषा तथा साहित्य के उत्थान में सरस्वती का योगदान

डॉ० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट्०

१९वीं शताब्दी का अन्तिम चरण वास्तव में उत्तर-भारत की संस्कृति एवं विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के इतिहास के उथल-पुथल का युग था। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके मण्डल के अन्य लेखकों के सतत प्रयत्न के परिणामस्वरूप राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की हिन्दु-स्तानी शैली का तिरोभाव हो चुका था और उसके स्थान पर भारतेन्दु की शुद्ध हिन्दी की शैली प्रतिष्ठित हो चुकी थी तथापि अभी भी हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान

के लिए बहुत कार्य करना शेष था। भारतेन्दु के सभी सहयोगी हिन्दी गद्य के लिए खड़ी बोली तथा पद्य के लिए ब्रजभाषा के पक्षपाती थे। शताब्दियों से मँजी हुई ब्रजभाषा को ही वे काव्य के लिए उपयुक्त माध्यम मानते थे। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में गद्य के लिए एक, तथा पद्य के लिए दूसरी भाषा का प्रयोग चल रहा था। उधर उर्दू में बहुत पहले से ही गद्य तथा पद्य दोनों की भाषा खड़ी बोली ही थी। हिन्दी साहित्य, विशेषतया गद्य के अभ्युत्थान के लिए यह आवश्यक था कि यहाँ भी गद्य एवं पद्य दोनों की भाषा एक ही हो। यह महान् कार्य था और इसका समारम्भ पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से सन् १९०३ से किया।

खड़ी बोली पद्य के लिए द्विवेदीजी ने संस्कृत वृत्तों का सफल प्रयोग किया। मराठी में संस्कृत छन्दों का प्रयोग बहुत पहले से प्रचलित था। द्विवेदीजी ने इसके लिए कदाचित् वहीं से प्रेरणा ग्रहण की थी। जो हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि द्विवेदीजी गद्य तथा पद्य दोनों के लिए खड़ी बोली के समर्थक थे और उन्होंने अत्यन्त सफलतापूर्वक "सरस्वती" के द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया। द्विवेदीजी के प्रभाव तथा प्रोत्साहन से खड़ी बोली के क्षेत्र में कई श्रेष्ठ कवि आये जिनमें बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पण्डित रामचरित उपाध्याय तथा पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। द्विवेदीजी ने "सरस्वती" के सम्पादन का भार सन् १९०३ में सँभाला था और इसके तीन वर्ष बाद सन् १९०६ से बाबू मैथिलीशरण गुप्त की कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं और उनके सम्पादनकाल में बराबर प्रकाशित होती रहीं। द्विवेदीजी की प्रेरणा से गुप्तजी ने खड़ी बोली को काव्य के लिए उपयुक्त भाषा बनाने के लिए जो कार्य किया वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्मरणीय रहेगा।

पंडित रामचरित उपाध्याय, पण्डित गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' तथा पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय की खड़ी बोली की कविताएँ भी द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से "सरस्वती" में सदैव प्रकाशित होती रहीं। इन कवियों के अतिरिक्त न जाने कितने अन्य कवियों ने खड़ी बोली में फुटकर कविताएँ लिखीं जिन पर द्विवेदीजी का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उस युग की प्रायः सभी पत्रिकाएँ इस प्रकार की कविताओं से भरी रहती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि इन तथाकथित कवियों में से बहुत कम में काव्य-प्रतिभा थी, किन्तु यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि इनकी रचनाओं से खड़ी बोली के गद्य-पद्य के एकीकरण का मार्ग अत्यधिक प्रशस्त हुआ।

हिन्दी भाषा के संशोधन तथा आधुनिक समालोचना के पथ को प्रशस्त करने का कार्य भी 'सरस्वती' ने ही सम्पन्न किया। भारतेन्दु युग के लेखकों——पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी—— की गद्य लेखन की शैलियों में स्थानीय बोलियों का पुट सहज में ही आ जाता था। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी यदाकदा हो जाती थीं। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के द्वारा भाषा-परिमार्जन का कार्य प्रारम्भ किया। इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि व्याकरण की शुद्धता और भाषा के परिमार्जन के प्रवर्तक द्विवेदीजी ही थे। 'सरस्वती' के सम्पादनकाल में उनके पास समालोचनार्थ जो पुस्तकें आती थीं उनकी व्याकरण-सम्बन्धी भूलों की द्विवेदीजी कड़ी आलोचना करते थे। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि लेखक सावधान हो गये। हिन्दी गद्य को परिमार्जित एवं व्याकरण के अनुसार शुद्ध रूप देने में 'सरस्वती' का सबसे बड़ा हाथ है।

यद्यपि हिन्दी में समालोचना का कार्य भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ हो गया था तथापि इस कार्य को भी व्यवस्थित करने का श्रेय द्विवेदीजी को ही है। कदाचित् द्विवेदीजी की ही प्रेरणा से पं० पद्मसिंह शर्मा ने 'सतसई संहार' शीर्षक के अन्तर्गत विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत बिहारी-सतसई की टीका की आलोचना लिखी थी। यह आलोचना धारावाहिक रूप से सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। इसमें शर्माजी ने बिहारी के मूल्यांकन में तुलनात्मक प्रणाली का प्रयोग किया था जो बाद में हिन्दी में खूब चली।

हिन्दी को 'सरस्वती' की सबसे बड़ी देन यह है कि इसने देश के विभिन्न अंचलों के विद्वानों को हिन्दी में लिखने के लिए प्रेरणा प्रदान की और इस प्रकार हिन्दी को समृद्ध बनाने में योगदान दिया। उस युग में अँगरेजी, संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के ऐसे अनेक विद्वान् थे जो अपने को हिन्दी लिखने में असमर्थ बताते थे। द्विवेदीजी ऐसे विद्वानों से स्वयं मिलकर तथा उनसे पत्र-व्यवहार करके हिन्दी में लिखने के लिए आग्रह करते थे। उन विद्वानों से प्राप्त लेखों की भाषा का परिमार्जन द्विवेदीजी स्वयं करते थे और इसके

बाद इन लेखों को इन्हीं लेखकों के नाम से 'सरस्वती' में प्रकाशित कर देते थे। यहाँ पर इस प्रकार की एक रोचक बात के उद्धरण का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। जिस वर्ष काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से द्विवेदी जी को अभिनन्दन ग्रंथ दिया गया था उसी वर्ष द्विवेदीजी के सम्मानार्थ प्रयाग में द्विवेदी मेले का आयोजन किया गया था। काशी से अभिनन्दन ग्रंथ लेकर द्विवेदीजी, इस मेले में, सीधे प्रयाग आये थे। उनके सम्मान में यहाँ जो सभा की गई थी उसके अध्यक्ष तत्कालीन प्रयाग विश्व-विद्यालय के उपकुलपति महामहोपाध्याय डॉ० गंगानाथ झा थे। अध्यक्ष के साथ ही 'लीडर' के यशस्वी सम्पादक स्वर्गीय श्री सी० वाई० चिन्तामणि तथा तत्कालीन हाई-कोर्ट के जज श्री उमाशंकर वाजपेयी मंच पर विराजमान थे। डॉ० झा ने सभा में एकत्र श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए कहा, "एक दिन श्री द्विवेदीजी प्रयाग में, मेरे घर आये और 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ मुझसे एक लेख माँगा। उन दिनों मैं स्थानीय म्योर सेण्ट्रल कालेज में संस्कृत का अध्यक्ष था। मैंने द्विवेदीजी से कहा कि मेरी मातृभाषा मैथिली है और हिन्दी में लेख लिखने की मुझमें क्षमता नहीं है। द्विवेदीजी ने मुझसे कहा कि आप लेख लिखें तो सही। मैंने साहस बटोरकर 'सरस्वती' के लिए एक लेख लिखा। जब 'सरस्वती' में प्रकाशित होकर वह लेख मेरे सामने आया तो मैंने देखा कि उसमें मेरे भावमात्र हैं और उसकी भाषा में आमूल परिवर्तन कर दिया गया है। मैंने 'सरस्वती' में इसके बाद भी लेख लिखे। द्विवेदीजी मेरे गुरु हैं।" यह कहकर डॉ० झा द्विवेदीजी के चरणस्पर्श के लिए आगे बढ़े। द्विवेदीजी उन्हें आगे बढ़ते हुए देखकर मंच से नीचे उतर गये। थोड़ी देर के लिए समस्त जनता अवाक् एवं आश्चर्य-चकित हो उठी। जब भावना का आवेग कुछ शान्त हुआ तो द्विवेदीजी ने कहा, "हम दोनों समवयस्क हैं तथा पंडित गंगानाथ झा की संस्कृत की योग्यता से मुग्ध होकर न जाने कब से मैंने इन्हें अपना गुरु बना लिया था। अतएव जब ये मेरे चरणस्पर्श के लिए आगे बढ़े तो मेरे मन में सहसा यह भाव आया कि यदि पृथ्वी फट जाती और मैं उसमें समा जाता तो अच्छा होता। मैं तो न जाने कब से इस प्रयत्न में था कि संस्कृत की इस महाविभूति की शक्ति हिन्दी को भी कुछ मिले और इसमें जो मुझे थोड़ी सफलता मिली उसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ।"

यदि द्विवेदीजी के सम्पादनकाल के 'सरस्वती' के लेखकों की सूची पर दृष्टिपात किया जाय तो यह सहज में ही ज्ञात हो जायेगा कि डॉ० झा के समान ही अन्य विद्वानों के लेखों को 'सरस्वती' में प्रकाशित करके द्विवेदीजी ने हिन्दी के अभ्युत्थान में कितना योगदान किया।

द्विवेदीजी बहुत बड़े पारखी थे और "सरस्वती" के सम्पादकत्व से अवकाश ग्रहण करने पर भी उसमें प्रकाशित लेखों को बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ते थे। जब श्री राहुल सांकृत्यायन ने दामोदर साधु के नाम से, श्रीलंका से, 'सरस्वती' में लेखमाला लिखी तब द्विवेदीजी ने तत्कालीन सम्पादकों से पत्र लिखकर पूछा था कि हिन्दी की इस नई विभूति का परिचय क्या है?

द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के द्वारा हिन्दी की जो अभूतपूर्व सेवा की वह 'हिन्दी भाषा तथा साहित्य' के इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेगी। वास्तव में द्विवेदीजी तथा उनके सम्पादनकाल के अन्य लेखक तथा कवि हिन्दी की नींव की वे ईंटें हैं जिन पर आज उसका भव्य-प्रासाद खड़ा है। यद्यपि हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने अपनी कृतियों में इसका उल्लेख किया है तथा द्विवेदीजी पर अधिनिबन्ध लिखकर शोध छात्रों ने विश्वविद्यालयों से उपाधियाँ भी प्राप्त की हैं तथापि अभी भी इससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी तथ्यों का पूर्णरूप से मूल्यांकन नहीं हो पाया है। आशा है भविष्य के हिन्दी के अनुसन्धानित्सु इस विषय पर नूतन प्रकाश डालेंगे।

❀ ❀ ❀

# श्रद्धेय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की पुनीत स्मृति एवं सरस्वती

श्री हीरालाल खन्ना

सन् १७-१८ की बात है जब मैंने सबसे पहले पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के दर्शन किये थे। उनकी साधारण वेशभूषा और तेजोमय व्यक्तित्व से मैं इतना प्रभावित हुआ कि जब भी मुझे अवसर मिलता, मैं उनके दर्शन करने अवश्य जाता। वह पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण लोगों में हिन्दी भाषा की ओर अरुचि देखकर बहुत ही दुखित होते थे। हिन्दी भाषा को उन्होंने ही व्याकरण के अनुसार सँवार-सुधारकर खड़ा किया था। वह चाहते थे कि यह भाषा शिक्षित नवयुवकों में समुचित आदर की पात्र बन सके। मेरी प्रथम भेंट के अगले माह से ही मुझे वे सरस्वती पत्रिका भेजने लगे। तभी से मेरा इस पत्रिका से सम्बन्ध है। आज भी पुराने अंक रक्खे हैं।

द्विवेदीजी कानपुर में आकर जूही में ही रहते थे। उस समय जूही जाने का सुविधाजनक मार्ग भी नहीं बना था। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। स्वर्गीय डॉ० एस० एन० सेन उनकी चिकित्सा करने वहाँ जाते थे। उन्हें वहाँ पहुँचने में अधिक समय लगता था, असुविधा भी होती थी। इसलिए शहर के अनेक जन पंडितजी से शहर में कुछ दिन अपने यहाँ रहने के लिए प्रार्थना करते, किन्तु पंडितजी किसीको अपने कारण तनिक भी असुविधा में डालना नहीं चाहते थे। इसलिए वह सदा टाल देते थे। मैं भी उनसे जब मिलने जाता, प्रार्थना करता कि मेरे पास कुछ दिन रहें। मैं शहर में बगिया मनीराम में रहता था। एक बार पंडितजी कृपा कर मेरे साथ रहने को राजी हो गये। मैं बहुत प्रसन्न हुआ। किन्तु वह बहुत ही स्वाभिमानी थे। जब तक सब सामान के साथ मेरे घर पर उनका नमक तक नहीं पहुँच गया, वह घर पर आये नहीं।

आने के पश्चात उनके भानजे की लड़की के लिए यदि मैं कोई खिलौना ला देता तो वह दो दिन पश्चात् उससे अधिक कीमती चीज लाकर मेरे लड़के को दे देते थे। वह बीमार थे। उनको वैद्य ने पपीते का दूध पीने को बताया था। वह शहर में मिलना बहुत आसान भी नहीं था। किन्तु किसी प्रकार मैं उसका प्रबन्ध करता। उन्हें उससे लाभ हुआ--यह देख संतोष होता था।

उनके पास हिन्दी के गण्य मान्य साहित्यिक आते थे। द्विवेदीजी की एक मुख्य विशेषता थी कि वह आगन्तुक कवि का स्वागत उसकी ही सुन्दरतम रचना सुनाकर करते।

अन्य लोगों के साथ पं० लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी और श्री सद्गुरुशरण अवस्थी भी उनसे भेंट करने आया करते थे। एक बार पंडितजी ने अवस्थीजी से संस्कृत के वे श्लोक सुनाने को कहा जो उन्होंने बी० ए० में पढ़े थे। अवस्थीजी नहीं सुना सके किन्तु द्विवेदीजी ने स्वयं सुना दिये। उनकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र थी। द्विवेदीजी की सिफारिश के कारण ही मैंने श्री सद्गुरुशरण अवस्थी को बी० एन० एस० डी० कालेज में हिन्दी अध्यापक के पद पर नियुक्त किया था--यद्यपि उस समय उनके पास हिन्दी पढ़ाने की कोई प्रामाणिक योग्यता नहीं थी। बाद में तो अनुकूल परिस्थितियों के कारण उन्होंने हिन्दी में एम० ए० प्रथम श्रेणी में किया और धीरे-धीरे हिन्दी साहित्य-जगत् में विशेष ख्याति भी पाई।

द्विवेदीजी के पास अपनी निजी बहुत-सी पुस्तकें थीं। उन्हें वह किसी संस्था को दान में देना चाहते थे। उस समय कानपुर में गयाप्रसाद लाइब्रेरी विकसित हो रही थी। वह कानपुर के एक बड़े वकील से सलाह लेकर कुछ करना चाहते थे--जिनका सम्बन्ध इस लाइब्रेरी से भी था। अतः वह इन वकील साहब के यहाँ सलाह लेने गये। उनकी वेशभूषा ऊँची धोती, मिरजई और हाथ में एक भारी-सा लट्ठ रहता था--इसी प्रकार वह वकील साहब के यहाँ भी गये थे। किन्तु उनके मुहर्रिर ने उन्हें एक साधारण देहाती समझकर उनके साथ अशिष्ट व्यवहार किया। इसलिए वह असंतुष्ट होकर चले आये और अपनी सब पुस्तकें काशी नागरीप्रचारिणी सभा को दान दे दीं। यह पूरी घटना स्वयं द्विवेदीजी ने मुझे बताई थी। वे जब मेरे यहाँ थे उस समय मैं इस लाइब्रेरी का सेक्रेटरी था और वहाँसे द्विवेदीजी के लिए समाचार-पत्र व पत्रिकाएँ आ जाती थीं। तभी मुझसे संतुष्ट होकर एक बार उन्होंने कहा था कि, "यदि मैं तुम्हें पहले जानता तो अपनी पुस्तकें इसी संस्था को देता।"

एक बार बँगला-साहित्य-सम्मेलन गवर्नमेंट स्कूल में हुआ था। मैं भी उनके साथ गया था। बंगालियों ने उनका बहुत आदर किया था। यह देखकर मुझे द्विवेदीजी की योग्यता और उदारता दोनों पर ही श्रद्धा हुई। किन्तु उनकी अपनी ही कान्यकुब्ज जाति ने उनका विशेष आदर नहीं किया। उन्होंने अपनी स्त्री की स्मृति में एक मंदिर बनवाया। इस पर भी कान्यकुब्जों ने काफी परेशान किया।

सन् १९११ में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का द्वितीय अधिवेशन प्रयाग में हुआ था। पं० गोविन्दनारायण उसके सभापति थे। उसमें आचार्य द्विवेदीजी ने भी भाग लिया था, किन्तु उस समय जो उन्होंने भाषण दिया उस पर हिन्दी-रसिकों ने बहुत टीका-टिप्पणी की थी। इससे द्विवेदीजी ने खिन्न होकर सम्मेलन में रुचि लेना ही छोड़ दिया था।

किन्तु १९२३ में कानपुर में जब साहित्य-सम्मेलन का तेरहवाँ अधिवेशन हुआ और उस समय पूज्य पुरुषोत्तम-दासजी टंडन को सभापति चुना गया तो आचार्य द्विवेदीजी ने स्वागत समिति का अध्यक्ष होना स्वीकार कर लिया। उस अधिवेशन में द्विवेदीजी का स्वागताध्यक्ष के पद से दिया गया भाषण हिन्दी के व्यावहारिक रूप के लिए बहुत ही उपयोगी था।

सरस्वती की हीरक जयन्ती मनाने का अवसर आ गया, यह जान कर हार्दिक संतोष होता है। इसीके द्वारा द्विवेदीजी ने हिन्दी लेखकों का मार्ग प्रदर्शन किया। हिन्दी गद्य के रूप को व्याकरण के ढाँचे में लाने में तथा आधुनिक भाषा को हिन्दी काव्य का माध्यम बनाने में उनका जो काम हुआ वह चिरस्मरणीय है। महावीरप्रसादजी की हिन्दी-सेवा का माध्यम 'सरस्वती' थी तथा इस पत्रिका के लिए यह गौरव की बात है कि इसका शैशव हिन्दी व संस्कृत के उस प्रकांड पंडित के द्वारा पोषित हुआ है जिसके निजी व सार्वजनिक दोनों ही जीवन सचाई से प्रेरित रहते थे। उनमें भक्त की निष्ठा थी। वह एक महान् साहित्यिक के साथ महान् मानव भी थे जो बहुत ही कठिन है।

❀ ❀ ❀

# हिंदी पत्रकारिता में 'सरस्वती' का स्थान

दीनानाथ शरण

'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' की व्यावहारिकता के अनुकूल ही समाचार-पत्रों की जन्म-गाथा है। इँगलैंड में दैनिक पत्रों के उद्भव की यही कहानी रही। अमीर उमरा शाही दरबार की खबरें जानने को उत्सुक रहते थे और एतदर्थ अपनी ओर से वेतनभोगी संवाददाता रखते थे। ये संवाद भेजनेवाले ही आधुनिक संपादकों के पूर्वज कहे जा सकते हैं। परवर्ती युगों में जब मुद्रण का आविष्कार हुआ, संवाद-पत्र बाजारों में भी छपकर बिकने लगे। इस प्रकार आधुनिक समाचार-पत्र का रूप निरंतर विकसित होता गया। रेल, जहाज, डाक और तार आदि के आविष्कारों ने पत्रों को उन्नत बनाया।

भारतवर्ष में पत्रों का विकास स्वतंत्र रीति से हुआ। अँगरेजों के प्रभाव-स्वरूप पहले अँगरेजी पत्र उपस्थित हुए और प्रतिक्रिया-स्वरूप हिंदी और अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी पत्रों का जन्म हुआ। हिंदी के पत्रों का इतिहास यही लगभग सौ-डेढ़-सौ वर्षों का है। रामचंद्र शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे लेखकों ने 'उदंत मार्तंड' को हिंदी का पहला समाचार-पत्र बताया है। 'उदंत मार्तंड' के संपादक कानपुर-निवासी पं० युगलकिशोर शुक्ल थे जो कलकत्ते की दीवानी अदालत में वकालत करते थे। इनका पत्र प्रत्येक मंगलवार को निकलनेवाला साप्ताहिक था। 'उदंत मार्तंड' के पश्चात् 'बनारस अखबार' (राजा शिवप्रसाद), 'सुधाकर' (तारामोहन मित्र), 'बुद्धि-प्रकाश' (सदासुखलाल), 'प्रजाहितैषी' (राजा लक्ष्मण सिंह) आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का उदय हुआ। हिंदी में पत्र-पत्रिकाओं की धूम बढ़ी और भारतेंदुकाल में तो पच्चीसों पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। इन पत्र-पत्रिकाओं का साहित्य के इतिहास में जो महत्त्व है वह

अविस्मरणीय है। इनके प्रभाव-स्वरूप न केवल राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष हुआ अपितु हिंदी गद्य का परिष्कार और प्रचार भी व्यापक स्तर पर सहज संभव बना। पत्रों की आवश्यकता व उसके महत्त्व को हिंदी संसार ने सहज ही समझा और बीसवीं शती के आरंभ होते न होते अनेक प्रथम स्तरीय पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। दैनिकों के अतिरिक्त साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं की धूम मच गयी।

बीसवीं शती के प्रथम दो दशकों की सबसे अधिक लोकप्रिय मासिक थी 'सरस्वती'। सन् १९०० ई० में इंडियन प्रेस के अध्यक्ष श्री चिंतामणि घोष ने 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। श्री राधाकृष्ण दास, श्री कार्तिकप्रसाद खत्री, श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', श्री किशोरीलाल गोस्वामी और श्री श्यामसुन्दरदास के नाम थे संपादक-मंडल में। 'सरस्वती' के प्रारंभिक अंकों पर 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा अनुमोदित' शब्दावली छपी मिलती है। 'सरस्वती' के प्रकाशन ने हिंदी पत्रकारिता को नयी दिशा दी, साहित्य के निर्माण व प्रचार में महत्त्वपूर्ण योग दिया एवं निरंतर हिंदी और हिंदुस्तान की चेतना को उद्बुद्ध व समृद्ध किया। उसका ऐतिहासिक मूल्य निर्विवाद है। सन् १९०३ में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक हुए। इनके सशक्त संपादकत्व में 'सरस्वती' हिंदी संसार की कंठहार बन गयी। उच्च कोटि की कविता-कहानियों, लेखों और भाषा की श्रेष्ठता के अधिकार के बल से हिंदी पत्रिकाओं में 'सरस्वती' कनिष्ठिकाधिष्ठित हो गयी। और यह 'सरस्वती' का ही प्रसाद था कि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री जयशंकर प्रसाद, श्री बेचन शर्मा 'उग्र', श्री सुमित्रानंदन पंत, श्री प्रेमचंद, श्री नाथूराम शंकर शर्मा श्री कौशिक आदि अनेक समर्थ लेखक हिंदी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की लौह-लेखनी ने समस्त हिंदी-संसार को लगभग पूरे दो युगों तक आंदोलित और प्रभावित किया। उन्होंने खड़ी बोली के गद्य का परिष्कार किया; नये समर्थ लेखक बनाये और हिंदी संपादन-कला का भी स्तरोन्नयन किया। ऐसी महत्त्वपूर्ण पत्रिका के सशक्त व्यक्तित्व का ऐतिहासिक महत्त्व निश्चय अविस्मरणीय है। संपादकाचार्य श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपनी पुस्तक में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व को अल्प मूल्यांकित किया है। वे लिखते हैं: "सन् १९०५ के शायद अगस्त अंक में 'सरस्वती' में भाषा और व्याकरण शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें कुछ ऐसी बातें थीं जो द्विवेदीजी जैसे विद्वान् के लिए अशोभन थीं।.... (बालमुकुन्द गुप्त, गोविंदनारायण मिश्र और शिवदत्त कविरत्न की प्रत्यालोचनाएँ छपीं).... परन्तु इसकी ओर हिंदीवालों का ध्यान नहीं गया।"[१] इसी प्रकार उन्होंने 'सरस्वती' के महत्त्व को भी न्यूनाकलित करते हुए लिखा है कि "सरस्वती पत्रिका द्वारा भाषा का काम हुआ है सही, परन्तु ऐसा नहीं हुआ है जिसके सामने उसके जन्म से पचहत्तर वर्ष पहले का कार्य फीका हो जाय। सन् १८७१ में निकले 'अल्मोड़ा अखबार' की भाषा भी किसी प्रकार निम्न कोटि की नहीं ठहरती और इसके भी पहले प्रकाशित भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'कवि-वचन-सुधा' का तो कहना ही क्या है!"[२] किन्तु यह विशेष ध्यान देने की बात है कि 'सरस्वती' पत्रिका का महत्त्व अथवा उसका ऐतिहासिक मूल्य केवल भाषा-संस्कार की ही दृष्टि से नहीं है। 'सरस्वती' ने एक साथ ही भाषा-परिष्कार एवं प्रचार किया, हिंदी को नये-नये सशक्त लेखक भी दिये तथा लोकशिक्षण एवं लोकरंजन का भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'सरस्वती' की ये महत्त्वपूर्ण देन, निश्चय, उसके संपादक के व्यक्तित्व की समर्थता के प्रमाण हैं। यही रहस्य है कि श्री विष्णुदत्त शुक्ल ने अपनी 'पत्रकार-कला' पुस्तक में प्रथम श्रेणी के संपादकों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है कि "इस श्रेणी में एक महापुरुष का नाम लेना अभी और बाकी है, वह है—आचार्य श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी का नाम। द्विवेदीजी ने इस कला की प्रवाह-धारा ही मोड़ दी थी। 'सरस्वती' के सजे हुए पटल पर अपनी ओजस्विनी लेखनी-द्वारा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पत्रकार पत्रकार-कला का नया ही रूप सामने ला उपस्थित किया था। नये आकार-प्रकार में नये ढंग से मासिक पत्र निकालने

१. समाचार-पत्रों का इतिहास (ज्ञानमंडल लिमिटेड बनारस, सं० २०१०) ले०—अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी; पृ० ३२२

२. उपरिवत् (भूमिका) पृ० च और छ।

का श्रेय आपको ही है। परिष्कृत गद्य-लेखन और समालोचना-पद्धति के तो आप प्रधान प्रवर्तक रहे हैं। द्विवेदीजी की सेवाएँ इस विषय में बहुत बड़ी हैं और हिंदी संसार उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता।"[१]

द्विवेदीजी के व्यक्तित्व का महत्त्व सुख्यात पत्रकार श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर के शब्दों में "उनके संपादन-कौशल में है।" संयुक्त प्रांतीय चतुर्थ प्रेस कान्फ्रेंस में स्वागताध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए पराड़करजी ने 'सरस्वती' और 'सरस्वती'-संपादक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का महत्त्व इस प्रकार व्यक्त किया था--"मैं 'सरस्वती' देखा करता था संपादन सीखने के लिए। कभी-कभी स्वर्गीय श्री सखाराम गणेश देउस्करजी को भी, जो संपादन-कला में मेरे गुरु थे, पढ़कर सुनाया करता था और वे ही मुझे उसकी विशेषताएँ बताया करते थे। वह विशेषता यह थी कि 'सरस्वती' का प्रत्येक अंक एक सर्वांगपूर्ण चित्र प्रस्तुत मालूम होता था। सारे अंकों में सामंजस्य हुआ करता था। यह नहीं कि जैसे-जैसे लेख आये वैसे-वैसे छाप दिये गये। आदि से अंत तक उसके चतुर चित्रकार का परिचय मिला करता था। यह बात मैंने अब तक किसी मासिक पत्र में नहीं पायी।..... जिसका प्रत्येक अंक अपने संपादक के व्यक्तित्व की घोषणा करता रहा हो--यह--'सरस्वती' की ही विशेषता थी और वह स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का निजत्व था। दुःख से लिखना पड़ता है कि वह मैंने उन्हीं में पाया और उन्हींके साथ लुप्त होते हुए भी देखा।"[२] पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने भी यह माना है कि "पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के संपादन काल में 'सरस्वती' की बड़ी उन्नति हुई और हिंदी संसार में द्विवेदीजी की विद्वत्ता की धाक जम गयी।.... द्विवेदीजी कोई बीस वर्षों तक 'सरस्वती' के संपादक रहे और अपनी विद्वत्ता, परिश्रम-शीलता और कार्यदक्षता से उसे उन्नत करते रहे। यही नहीं, उन्होंने बहुत से लेखक और कवि तैयार

१. पत्रकार कला (कलकत्ता, द्वितीय सं० १९३७ ई०) पृ० १३

२. बाबूराव विष्णु पराड़कर (लेखक--श्री लक्ष्मीशंकर व्यास) पृ० ३१८



कर दिये।"[१] डॉ० श्रीकृष्णलाल ने भी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का महत्त्व बतलाते हुए 'सरस्वती' का ठीक ही ऐतिहासिक आकलन किया है, "बीसवीं शताब्दी के प्रथम पच्चीस वर्षों में 'सरस्वती' ही सबसे अच्छी मासिक पत्रिका थी जिसने हिंदी भाषा और साहित्य की अपूर्व और अनुपम सेवा की।"[२]

हिंदी पत्रेतिहास में 'सरस्वती' के ऐतिहासिक व साहित्यिक स्थान का पुनर्मूल्यांकन करते समय समकालीनों के विचार इस प्रकार स्पष्ट हैं। पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्री लक्ष्मीशंकर व्यास और डॉ० श्री कृष्णलाल के अतिरिक्त, डॉ० रामरतन भटनागर का मत इस संबंध में और भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि डॉ० भटनागर ने समाचार पत्रों के इतिहास विषय पर ही विश्वविद्यालय की डॉक्टर उपाधि पायी है। "सरस्वती' ने दस करोड़ से अधिक जनता का साहित्यिक नेतृत्व किया और यह लगातार लगभग पच्चीस वर्षों तक: पत्रेतिहास में इसकी कोई दूसरी मिसाल नहीं है। 'सरस्वती'-संपादक आचार्य द्विवेदीजी की लौह लेखनी हिंदी गद्य-पद्य दोनों के परिष्कार-प्रचार में सुसमर्थ सिद्ध बन ऐतिहासिक महत्त्व की अधिकारिणी हुई। लोकरंजन के सस्ते स्तर से ऊपर उठकर 'सरस्वती' ने लोक-शिक्षण का महान् कार्य किया जो यदि संक्षेप में कहा जाय तो समाज में सात्विक ज्योति जगाता था। मानवतावादी दृष्टिकोण, सामयिकता और रुग्ण यौन-वासना का बहिष्कार--'सरस्वती' के मुख्य आदर्श थे। इन आदर्शों से अनुप्राणित 'सरस्वती' संभव है, सदैव एक समान लोकप्रिय बनी न रह सके, किन्तु अपनी उदात्त, विराट् और महिम प्रवृत्तियों के कारण उसका ऐतिहासिक मूल्य, निस्सन्देह, सदैव अ-परिवर्तनशील और स्थायी बना रहेगा। 'सरस्वती' की परिनिष्ठित हिंदी--न संस्कृत और न उर्दू--ही आज भी प्रचलित और परिनिष्ठित है तथा समस्त हिंदी प्रदेश में

१. समाचार पत्रों का इतिहास--अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी; पृ० ३२३। (प्रकाशक--ज्ञानमंडल लिमि० बनारस, सं० २०१०)

२. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास--डॉ० श्रीकृष्णलाल; पृ० ३८५। (प्रकाशक--हिंदी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय १९४२ई०)

उसे ही मान्यता प्राप्त है।" स्पष्ट है कि 'सरस्वती' ने भाषा का रूप निर्माण व प्रचार किया; समस्त हिंदी संसार के लिए विराट् संभावनाओं के द्वार खोल दिये। खड़ी बोली साहित्य का भांडार समृद्ध हुआ; लोक-शिक्षण की नयी दिशा भी सरस्वती द्वारा ही उद्‌घाटित हुई। अग्र-लेख, पुस्तक-समालोचना, संपादकीय, परिचयात्मक सामग्री तथा मराठी, गुजराती, उर्दू, बँगला, अँगरेजी आदि पत्रों से टिप्पणियाँ आदि 'सरस्वती' की अन्य आकर्षण थीं। कुल मिलाकर 'सरस्वती' ने हिंदी पत्रकारिता को नयी दिशा प्रदान की; फलतः उसके उन्नयन के भावी रूप के पथ प्रशस्त करने का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य किया। 'सरस्वती' के वर्तमान संपादक के संपादकत्व में इसकी और भी उन्नति उद्‌घाटित हो, मेरी शुभकामनाएँ सदैव इसके साथ हैं।

❀ ❀ ❀

# प्रकाशक का निवेदन

## (दिसम्बर १९०० ई० में "सरस्वती" के प्रकाशक इंडियन प्रेस के अध्यक्ष श्री चिन्तामणि घोष के विचार)

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की विशेष अनुकम्पा और अनुग्राहक, ग्राहक, विज्ञ पाठक, सुलेखक और हिन्दी के प्रेमियों की पूर्ण कृपा से सरस्वती आज एक वर्ष की हो गई। इस प्रकार की साहित्य-विषयक मासिक पत्रिका का इस देश में एक अभाव बना हुआ था, इसलिए इस अभाव के दूर करने की अभिलाषा से हमने काशी की नागरीप्रचारिणी सभा से सहायता माँगी और सभा ने भी हिन्दी-साहित्य के कल्याणार्थ यथाशक्ति सहायता देने में त्रुटि नहीं की।

आज एक वर्ष हुआ कि सरस्वती के द्वारा हिन्दी के पठित समाज से हमारी नई रीति से जान-पहिचान हुई। परन्तु जहाँ तक हमने देखा, बहुतेरे लोग ऐसे दिखाई दिये कि जिन्हें इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं है कि "मासिक पत्रों से क्या-क्या लाभ हैं।" और सच तो यह है कि छापने-वालों की स्वार्थसिद्धि को छोड़ कर मासिक पत्रों के द्वारा साहित्य का कितना उपकार होता है, यह बात वही भली भाँति से समझ सकते हैं, जिन्होंने अँगरेजी मासिक पत्रों का स्वाद चक्खा है, दूसरे नहीं।

मासिक पत्रों से क्या लाभ होता है, इसके उत्तर में स्थूल रूप से हम केवल इतना ही कहना उचित समझते हैं कि आप लोग लाख चेष्टा कीजिए, परन्तु बिना मासिक पत्र के साहित्य का मूल कदापि सुदृढ़ नहीं हो सकता। एक दिन ऐसा था कि बंगालियों की भाषा (बँगला) हिन्दी से भी हीन, मलीन और रोगग्रस्त थी। उस समय बंकिम-चन्द्र आदि बड़े-बड़े उदार पुरुषों ने अपनी मातासदृशी मातृ-भाषा के उद्धार करने के लिए दृढ़ता से लेखनी धारण की और मासिक पत्रों ही की सहायता से उन महानुभावों ने बंगभाषा के रोग को दूर किया। आज, प्रिय पाठक! आप लोग ध्यानपूर्वक बंगभाषा के सौंदर्य्य को देखिए और शुद्धान्तःकरण से कहिए तो, कि उसकी मनोहर माधुरी से लोग कैसे लाभ उठा रहे हैं!

एक दिन उसी बंगदेश में ऐसा भी हो गया है कि लोग अँगरेजी छोड़कर अपनी मातृभाषा की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते थे, परन्तु आज दिन जितने अँगरेजी और संस्कृत के अच्छे अच्छे विद्वान् हैं, वे ही अपनी मातृभाषा (बँगला) के कर्णधार हैं। वे राजकार्य आदि को छोड़कर अपनी मातृभाषा के सौंदर्य्य-साधन में अपने जीवन को बिताने में अपना कर्त्तव्य और गौरव समझते हैं। और उन्हें अब सचमुचे अपनी मातृभाषा में अपने पाण्डित्य को दिखलाकर जितना आनन्द होता है, उतना अँगरेजी आदि अन्यान्य भाषाओं में पूर्ण अधिकार रहने पर भी नहीं होता। बंग-भाषा के बाल्य-काल के समान आज हिन्दी साहित्य की भी वैसी ही शोचनीय दशा हो रही है।

जब काशी की नागरीप्रचारिणी सभा की सहायता से सरस्वती का जन्म हुआ, तो लोगों के अन्तःकरण में अनेक भाँति की कल्पनाएँ उठी थीं। उनमें कितनों का यह मत था कि हिन्दी के बहुतेरे मासिक पत्रों के समान यह बिचारी भी प्लेग-पीडित हो शीघ्र ही अनन्त-धाम को सिधारेगी।

कितने कटाक्षों ही की बज्र-वर्षा से इसे नष्ट करने के लिए उतारू हो गये और कितनों ने इसके रंग-रूप से विमोहित होकर हार्दिक हर्ष प्रकट किया। चारों ओर से हमारे पास पत्र पर पत्र आने लगे, परन्तु उनमें अनेक महाशय पत्रों ही के द्वारा अपना सिर हिला-हिलाकर मानों कहने लगे कि आजकल नगर-नगर में छापेखानों की धूम मची है और मासिक पत्र तो केवल बिचारे भोले-भाले भलेमानुसों को ठगने ही के लिए विद्युच्छटाओं की भाँति क्षणभर के लिये चमक और थोड़ा बहुत द्रव्य समेट कर अन्धकार-गर्भ में विलीन हो जाते हैं। कई एक सहृदय महाशयों ने यह भी यथार्थ लिखा कि वे मासिक पत्रों के फन्दे में पड़ रुपये देकर बड़ा धोखा खा चुके हैं, अतएव अब समझ-बूझकर काम करेंगे, इत्यादि। जो हो, परन्तु उन्हीं सब कारणों से बिचारी सरस्वती पर भी दूसरों के पापों का प्रायश्चित्त आ टूटा और पहिले-पहल इसपर भी लोगों ने सन्देह करने में कोई बाधा न पाई।

नए और अपरिचित प्रकाशकों की धूर्त्तता पश्चिमोत्तर प्रदेश के मासिक पत्रों के स्वल्पायु होने में अवश्य एक प्रधान कारण है, परन्तु यदि लोगों को अपनी मातृभाषा के साहित्य से यथार्थ प्रीति हो तो इन सब बाधा-विपत्तियों को टाल कर भी सरस्वती उत्तमता से अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकती है।

संवादपत्र दैनिक हों या साप्ताहिक, उनकी दशा ऐसी है कि जब बूअर का युद्ध, ट्रांसवाल की चढ़ाई वा रूस का भय समाप्त हो गया तो फिर उन्हें कोई छूता तक नहीं। उन पत्रों को एक बार पढ़ लिया, बस वे पुराने हो गये। आज पत्र पढ़ लिया, कल वह पुराना हो गया और परसों कागज इसका रद्दी के भाव पंसारियों के हाथ पहुँचा। यह सब हमने दैनिक वा साप्ताहिक पत्रों के विषय में कहा है, मासिक पत्रों के लिए यह बात नहीं है। ये नित्य नये हैं, यहाँ तक कि ज्यों-ज्यों दिन बढ़ते जाते हैं, इनका यौवन बढ़ता जाता है। बहुत दिनों पीछे भी पुराने मासिक पत्रों की खोज हुआ करती है और तब बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से इनका पता लगता है, तिसपर भी बहुधा पूरी फाइल नहीं ही मिलती। इसका यही कारण है कि मासिक पत्रों के लेख बहुत दिन बीतने पर भी कभी पुराने नहीं होते। इनके लेख सदैव अजर अमर चिर-यौवन-सम्पन्न और जब पढ़ो तभी नये जान पड़ते हैं। परन्तु हाँ, हिन्दी में अभी ऐसे सुलेखक भी बहुत कम दिखलाई देते हैं, जो मासिक पत्रों के उपयोगी विषय लिख सकें। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हिन्दी में ऐसे लेखक हैं ही नहीं। परन्तु जहाँ तक हमने देखा और विद्वानों के मुख से सुना, हमें यही जान पड़ता है कि लेखकों को हिन्दी लिखने की ओर कम रुचि है। कारण यह है कि जो संस्कृत के विद्वान् हैं वे हिन्दी की ओर देखते तक नहीं, और जो अँगरेजी के विद्वान् हैं वे हिन्दी लिखना अनुचित समझते हैं। बस, जैसे लेखकों का अभाव वैसे ही पाठकों का भी अभाव है।

"क्यों, महाशय! यह आपके सामने क्या पड़ा है?" "जी, यह एक मासिक पत्रिका है"। "अँगरेजी में है?" "जी, नहीं, हिन्दी में"। "उं:"। बस, "उं:" कह कर प्रश्न-कर्त्ता ने उस पत्रिका की ओर से मुँह मोड़ लिया, मानों हिन्दी की पत्रिका को पढ़ना रौरवगामी होने के समान है और उसकी छाया तक का स्पर्श करना भी अनुचित है।

चाहे आप हिन्दू कहलाते हों, चाहे हिन्दी आपकी मातृभाषा क्यों न हो, परन्तु दुःख की बात है कि हम लोगों में बहुत से ऐसे लोग हैं जिनकी हिन्दी की ओर तनिक भी रुचि नहीं है। पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध तो हिन्दी का घर ही है, फिर घर ही में अपने घर की वस्तु को ऐसी उपेक्षा की दृष्टि से देखना क्या दुःख का विषय नहीं है? पाठक, आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि हिन्दी के ऐसे भी प्रेमी हैं जो दक्षिण और सिन्धु-देश तक में वास करते हुए भी सरस्वती को मँगवा कर रुचि से पढ़ते हैं और सर्वदा उसमें अपना स्नेह प्रकट करते हैं और हमारे इसी देश में बहुतेरे महाशय ऐसे हैं कि जिन्होंने सरस्वती की ओर ध्यान तक देना अनुचित समझ रक्खा है।

बहुत से पाठक ऐसे हैं जो कहा करते हैं कि महाशय मूल्य सस्ता कर दीजिए। अजी, सस्ता तो हम बहुत कुछ कर सकते हैं, परन्तु वह भी आप ही लोगों के हाथ में है। सुनिए, जिस दिन सरस्वती के ग्राहक ५००० हो जायँगे उसी दिन से तीन ही रुपये में इससे दूने आकार की सरस्वती अपने पाठकों के पास पहुँचेगी और तब इसका रूप-रंग भी वर्त्तमान समय की अपेक्षा बहुत ही सुन्दर हो जायगा।

बँगला, मरहठी, गुजराती आदि देश भाषाओं के मासिक पत्रों के पढ़नेवाले हिन्दी से बहुत ही अधिक हैं। यह तो भारतवर्ष की कथा है; अब एक बार अमरीका की

ओर तो देखिए कि वहाँके कई मासिक पत्रों के पढ़नेवाले कितने हैं—

| | | |
|---|---|---|
| मनसी मेगेजिन, मासिक, सचित्र, | ६००,००० | ग्राहक |
| मैक्क्लोर्स् ,, ,, ,, | ४००,००० | ,, |
| स्क्रिबनर्स ,, ,, ,, | १५०,००० | ,, |
| लेसली पापूलर ,, ,, | २००,००० | ,, |
| ऐनस्ली ,, ,, ,, | १५०,००० | ,, |
| स्ट्रान्ड ,, ,, ,, | २००,००० | ,, |
| लेडीज होम जरनल— (केवल स्त्रियों के लिए) | ९२५,००० | ,, |
| पीपल्स होम जरनल ... ... | ३७०,००० | ,, |
| दी यूथ्स् कम्पैनियन, साप्ताहिक सचित्र (केवल बालकों के लिए) | ५००,००० | ,, |
| विमैन्स होम कम्पैनियन (केवल स्त्रियों के लिए) मासिक | ३००,००० | ,, |
| दी फार्म जरनल, मासिक सचित्र (केवल खेती-बारी के लिए) | ५००,००० | ,, |

यहाँके लोगों का विश्वास है कि संवादपत्र (दैनिक वा साप्ताहिक) को छोड़ और किसी प्रकार के पत्रों का निकलना वा पढ़ना असम्भव है। इस एक वर्ष के भीतर कितने ही महाशयों ने हमको लिखा है कि सरस्वती अखबार में जीवन-चरित्र ही निकलते हैं, उसे पढ़कर क्या होगा? उसमें खबर कुछ नहीं छपती। ऐसे महाशयों का कौतूहल निवारण करने के लिए एक तालिका दी जाती है जिससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि अँगरेजों के छोटे से ग्रेट ब्रिटेन मात्र में, जो हिन्दुस्तान से बहुत छोटा देश है, कितने प्रकार के पत्र छपते हैं—

हिसाब किताब—२; खेती बारी—३०; पुरातत्व—३; इमारत—८; सेना सम्बन्धी—११; शिल्पकला—१६; ज्योतिष—१; मल्लयुद्ध सम्बन्धी—१२; नीलाम—३; रोटीवालों के—३; कोठीवाली—१; मधुमक्षिका—३; पुस्तक बेचनेवालों के—९; जूतेवालों के—२; वनस्पति-विज्ञान (Botany)—२; दान—५; रसायन और औषध बनाने के विषयों के—१०; डाक्टरी विद्या—२६; शतरंज—३; हास्यरंग—३०; वाणिज्य—४१; बजाजा—४; मेवाफरोश—२; गोपालन—१; भूगोल—२; बाल काटनेवाले नाउओं के—२; जौहरियों के—१; धोबियों के—३; कानून सम्बन्धी—१८; चमड़ेवालों के—५; साहित्यविषयक—१८; विवाह विषयक—२; कल-पुरजों के—३; कागज के व्यापार सम्बन्धी—१०; गानविद्या—१८; खान सम्बन्धी—३; जन्तुओं की सृष्टि सम्बन्धी—६; फोटोग्राफी—१०; मुर्गीवालों के—८; जहाज—१४; खेलकूद—४०; दर्जिओं के—३; इत्यादि, इत्यादि—कहाँ तक लिखें।

और क्या हमारे देश में एक भी साहित्य सम्बन्धी मासिक पत्रिका ठीक ठीक नहीं चल सकती?

पाठक, और कितनी गिनावें, अमरीका और इँगलैण्ड को छोड़ योरप के अन्यान्य देशों में भी पत्रों की वैसी ही उन्नत अवस्था है। और भारतवर्ष की दशा! हाय रे!! सरस्वती के जन्मते ही लोगों को आतंक सा होता था कि बिचारी कहीं हमारे तीन रुपये हड़पकर मर न जाय! भला, पाठक! कहिए तो सही, अब यह पूरा-पूरा किसका दोष है?

परन्तु, हाँ, आज सरस्वती के एक वर्ष के वयःक्रम हो जाने पर हमने इतनी बातें कहनी उचित समझीं, क्योंकि अब दिन-दिन इसकी ओर लोगों की रुचि बढ़ती जाती है। साथ ही इसके पढ़नेवालों की भी संख्या प्रति सप्ताह में अधिक होती जाती है। इसलिए आशा है कि पहिले वर्ष से दूसरे वर्ष में इसके आदर करनेवालों की संख्या बहुत बढ़ जायगी। अतएव अब हमारा सब साहित्यानुरागियों से यह सविनय निवेदन है कि वे सरस्वती को अपनी ही समझें और जिस भाँति हो सके, इस दूसरे वर्ष के आरभ ही से नये उद्यम, उत्साह और उद्योग से आइए हम आप सब परस्पर एकमत होकर इसकी सेवा में लग जायँ।

हमें आशा है कि दूसरे वर्ष की सरस्वती पहिले वर्ष की अपेक्षा सब भाँति से अच्छी होगी। इसलिए अब ग्राहक लोग कृपाकर जनवरी मास में दूसरे वर्ष का मूल्य तीन रुपया अवश्य ही भेज दें, क्योंकि आप लोगों की सहायता बिना सरस्वती किसी प्रकार भी अपने कर्त्तव्यपालन में समर्थ नहीं हो सकती। इस कारण आशा है कि आप लोग अग्रिम मूल्य भेजने में त्रुटि न करेंगे।

अन्त में हम उन महानुभावों को धन्यवाद दिया चाहते हैं जिन्होंने इस वर्ष लेखों द्वारा सरस्वती की सहायता की है, क्योंकि इस समय हमारे पास केवल कोरे धन्यवाद को छोड़ और कुछ नहीं है, पर विश्वास रखिए यह भी हार्दिक है।

❀ ❀ ❀

## अपना ५० प्रतिशत ज्ञान सरस्वती से अर्जित किया।

✓ श्री पद्मभूषण राय कृष्णदास

**सरस्वती** के दर्शन मुझे पहले पहल १९०१ के मार्च में हुए, उसके अविर्भाव के पन्द्रह महीने बाद। उस समय मेरा नवाँ बरस चल रहा था। तो भी उसके पहले से, मैं पुस्तक संग्रही और पुस्तक-कीट था——भले ही समझ पाता रहा होऊँ, रुपये में एक पाई मात्र।

अपने एक ज्येष्ठ बन्धु के यहाँ मैंने उसे देखा और उठा लाया। मुश्किल से उसकी तिहाई चौथाई समझ सकता था, फिर भी उसका रूप-रंग ऐसा भव्य था और उस समयवाली हिन्दी छपाई के इतना ऊपर था कि हठात् मैं सरस्वती मँगवाने लगा; पहले वर्ष की फाइल भी आ गयी। तब से लगाकर द्विवेदी-सम्पादन-काल की पूर्ति तक वाली **सरस्वती** की समूची फाइल मेरी एक विशिष्ट पुस्तक-सम्पत्ति है।

मैं **सरस्वती** पढ़ता गया, पढ़ता गया और जैसे जैसे समझ बढ़ती गयी उसका अर्थ भी आत्मसात् करता गया। मैं सदैव सगर्व कहा करता हूँ, और यह यथार्थ है कि—— मैंने जीवन में जो यत्किंचित् ज्ञान अर्जन किया है, उसमें से ५० प्रतिशत अकेले **सरस्वती** से उपलब्ध हुआ है, शेष ५० प्रतिशत अनेक विभिन्न स्रोतों से।

अजन्ता के प्रथम दर्शन किये मैंने **सरस्वती** की कृपा से।...फतहपुर सीकरी की पहले पहल सैर कराई **सरस्वती** ने।....रवीन्द्र का पहला परिचय पाया मैंने सरस्वती से।...साहित्यिक मान्यताओं का परिज्ञान मुझसे कराया सरस्वती ने।...उसने मुझे दिया आचार्य द्विवेदी सरीखा गुरु और उसीने कराया भाई मैथिलीशरण से प्रथम परिरंभ।

कहाँ तक गिनाऊँ, क्या, क्या गिनाऊँ : ज्ञान विज्ञान की कितनी ही वन-वीथियों और लता-वितानों में अटन-विहरण कराया सरस्वती के मार्ग-निर्देशन ने।

उसी सरस्वती की अपर-षष्ठि के मंगल-अवसर पर उसके भास्वर चरणों में शत-शत सतत प्रणाम।

## सरस्वती का आश्रय

ब्रह्मर्षि श्रीपाद दा० सातवलेकर

श्री चिन्तामणि घोष के द्वारा लगाये गये और श्री बाबू श्यामसुन्दरदास और श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा सींचे गये इस वृक्ष ने हिन्दी-प्रेमियों के लिए जो आश्रय दिया, वह सदा अविस्मरणीय रहेगा। आज भी इसकी छाया में बढ़े हुए अनेक साहित्यकार हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं।

अनेक साहित्यकारों की अन्तर्निहित प्रतिभा को प्रकाश में लाने का जितना श्रेय इस पत्र का है, उतना अन्य पत्र का दीख नहीं पड़ता। हर एक साहित्यकार और हिन्दी-प्रेमी को इस पत्र का कृतज्ञ होना चाहिए।

## अनुपम सेवा

श्री वियोगी हरि

'सरस्वती' ने हिन्दी भाषा एवं हिन्दी-साहित्य की अनुपम सेवा की है। मासिक पत्रिकाओं में सरस्वती का मूर्धन्य स्थान रहा है। आचार्य द्विवेदीजी तथा 'सरस्वती' के मणि-कांचन-योग पर सौभाग्यशालिनी राष्ट्र-भाषा को सदा गर्व रहेगा। इस सुयोग के प्रेरक स्व० बाबू चिन्तामणि घोष की हिन्दी-सेवा को कौन भुला सकता है?

## साहित्य की चिर यशस्विनी संस्था

पद्मभूषण रामधारी सिंह दिनकर

साहित्य के क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व कभी भी कम नहीं होता, किन्तु, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में "सरस्वती" की जो महिमा है, वह एकान्त विलक्षण और अद्वितीय है। "सरस्वती" के जरिये पुण्य-श्लोक पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने हिन्दी भाषा और साहित्य की इतनी अधिक सेवा की कि हिन्दी-साहित्य के एक युग का नाम ही द्विवेदी-युग पड़ गया। सरस्वती मात्र एक पत्रिका नहीं, साहित्य की यशस्विनी संस्था रही है। जिस गौरव के साथ हम नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की याद करते हैं, उसी गौरव से हम सरस्वती की भी सेवाओं का उल्लेख करते हैं।

साहित्यिक महिमा के अलावा, सरस्वती का एक और महत्त्व है जिसे मैं राष्ट्रीय महत्त्व मानता हूँ। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का विचार पहले पहल बंगाल में उत्पन्न हुआ था। देवनागरी लिपि भारत की सभी भाषाओं की लिपि हो इस विचार का भी आदि प्रवर्तक बंगाल है। और एक बंगाली सज्जन ने ही हिन्दी में एक सर्वश्रेष्ठ पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जो आज तक हिन्दी की सेवा करती जा रही है।

सरस्वती की हीरक-जयन्ती, असल में, अभिनव हिन्दी भाषा और साहित्य की हीरक-जयन्ती है। यह उत्सव सारे देश को राष्ट्रीय महोत्सव के समान प्रिय होना चाहिए। इस आनन्दपूर्ण पर्व के अवसर पर मैं पूज्यवर द्विवेदीजी की स्मृति को प्रणाम करता हूँ। स्वर्गीय घोष महोदय को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ एवं सरस्वती के चरणों पर पुष्पांजलि चढ़ाता हूँ।

## संस्मरणीय सेवा

### म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

"सरस्वती-पत्रिका" की हिन्दी-साहित्य सेवा और देश-सेवा वास्तव में संस्मरणीय है। उस युग में इसने साहित्य-सेवा का आरम्भ किया था जबकि हिन्दी में इनी-गिनी ही पत्र-पत्रिकाएँ थीं। हर्ष की बात है कि इसकी साहित्य-सेवा के आज ६० वर्ष पूर्ण हो गये। इसके अनन्तर कई पत्रिकाओं ने साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया, किन्तु वे अल्प-काल में ही अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर गयीं। इतने काल तक जीवित रहने का सौभाग्य एक इसीको प्राप्त हुआ। आरम्भ से ही इसमें दार्शनिक, वैज्ञानिक और साहित्य सम्बन्धी अन्यान्य विषयों के गम्भीरतम लेख प्रकाशित होते रहे जिनमें बहुत से आज भी उपयोगी प्रमाणित होंगे। कई आन्दोलन इसने उठाए और कई आन्दोलनों में भाग लिया। यह भी सौभाग्य की बात है कि आरम्भ से ही यह योग्यतम-सम्पादकों के हाथ में रही। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसकी बहुत काल तक संस्मरणीय सेवा की है।

## भाषा और साहित्य के निर्माण में योगदान

### पद्मभूषण आचार्य शिवपूजन सहाय

हिन्दी में उल्लेखनीय और गण्य-मान्य मासिक पत्रिका एकमात्र 'सरस्वती' ही है जो लगातार साठ साल तक नियमित और सुसम्पादित रूप में निकलती आई है। अतिशय आनन्द का विषय है कि उसकी हीरक-जयन्ती यथोचित समारोह और विशिष्ट आयोजन के साथ मनाई जा रही है। परमात्मा से प्रार्थना है कि उसकी अनेकानेक शती-जयन्तियाँ भविष्य में मनाई जाती रहें।

हिन्दी भाषा के निर्माण और परिष्कार तथा हिन्दी-साहित्य के विकास और अभ्युदय में 'सरस्वती' का योगदान-ऐतिहासिक महत्त्व का है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखकों को इस बात पर एकमत देखकर 'सरस्वती' के प्रति स्वभावतः श्रद्धा होती है। प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी आज उसकी हीरक-जयन्ती पर उल्लसित और आह्लादित है तथा परमात्मा से मनाता भी है कि हिन्दी की यह गौरव-गरिमामयी वैजयन्ती सदा फहराती रहे।

'सरस्वती' के सम्बन्ध में संस्मरणात्मक और इतिवृत्तात्मक बातें यदि लिखी जायँ तो विस्तृत लेख तैयार हो जायगा। सच कहा जाय तो एक बड़ी पुस्तक बन जायगी। अतः संक्षिप्त शब्दों में इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'सरस्वती' की सेवाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी अभिनन्दनीय तथा चिरस्मरणीय समझी जायँगी। भगवान् उसे अमर करें और उसके आदर्श उत्साही संचालकों को परम्परा-पालन में सतत समर्थ रखें।

## सरस्वती वास्तव में सरस्वती

### पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

'सरस्वती' वास्तव में सरस्वती है। इसको हिन्दी पत्रिकाओं की मातामही होने का गौरव प्राप्त है। इसने अनेक पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया है और अपनी प्रेरणाओं से हिन्दी जगत् को अनुप्राणित किया है। जातीयता, राष्ट्रीयता तथा भारतीय-संस्कृति का मूलमंत्र देनेवाली 'सरस्वती' अमर हो। और यह और इसकी संतति भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में साफल्य के साथ सतत यत्नशील रहे।

## मेरे बाल्यकाल के अतिरिक्त ज्ञान की एकमात्र साधिका

### डा० गुलाबराय

वीणा पुस्तक धारिणी माता सरस्वती के पावन नाम से अलंकृत आपकी पत्रिका की हीरक-जयन्ती का शुभ संवाद सुनकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। सरस्वती मेरे बाल्यकाल में हम लोगों के अतिरिक्त ज्ञानवर्द्धन की एकमात्र साधिका

रही है। हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार की वह सफल साधिका रही है। पूज्य द्विवेदीजी की कृपा से न जाने कितने लेखक प्रकाश में आये और उनको प्रोत्साहन मिला। मुझे उनकी ताड़ना भी मिली और प्रोत्साहन भी। मैंने पूज्य द्विवेदीजी की एक पुरानी कविता को जो 'आशा' पर लिखी गयी थी उनकी बिना आज्ञा के वरन् पूर्ण श्रद्धा और सद्भावना के साथ अपनी 'फिर निराशा क्यों' नाम की पुस्तक में बिना उनकी आज्ञा के उद्धृत कर दिया था। वह कविता उनकी पुरानी कविताओं में से थी और उनकी दृष्टि में उसमें कुछ दोष थे। एक आधा दोष कुछ छपाई में भी रह गया था। वे दोषयुक्त अपना उद्धरण नहीं देख सकते थे। वे दोषों को, न अपने न पराये, विशेषकर व्याकरण और छपाई के दोषों को सहन नहीं कर सकते थे। मैं स्वभाव से ही साधारण दोषों का उपेक्षक रहा हूँ। मैं तो गोस्वामीजी के इस कथन का अनुयायी रहा हूँ 'का भाषा का संस्कृत भाव चाहिए साँच'। पूज्य द्विवेदीजी ऐसे न थे। वे भाव के साथ भाषा भी परनिष्ठित और टकसाली चाहते थे। इसी कारण उन्होंने मेरे दो एक लेख वापिस कर दिये। एक लेख में उन्होंने अपने हाथ से संशोधन कर वापिस कर दिया। मैंने उनके संशोधन सहर्ष और सधन्यवाद स्वीकार कर लिये। इलाहाबाद के द्विवेदी मेले के अवसर पर जब मैं उनसे मिला तब उन्होंने मुझे उदारतापूर्वक सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

स्वर्गीय महाराजा छतरपुर द्विवेदीजी से बहुत प्रभावित थे। पत्रिका तो वे बड़े आदर और चाव के साथ पढ़ते ही थे। उनकी आलोचनाओं के आधार पर पुस्तकें मँगाते थे। साहित्यिक मामलों में ही नहीं, राजनीतिक मामलों में भी वे उनकी सलाह लेते थे। दो-एक दीवान भी उनकी सलाह से रखे थे। शायद पंडित श्यामबिहारी मिश्र और सुखदेव बिहारी मिश्र और चम्पाराम मिश्र तो निश्चय ही उनके सुझाव पर ही दीवानी के पद पर रखे गये थे।

## हिंदी गद्य शैली को प्रौढ़ता प्रदान की
### पं० छविनाथ पांडेय

अपने साठ साल के जीवन में प्रयाग की मासिक सरस्वती ने हिन्दी की जो सेवा की है वह अतुलनीय है। आज से साठ साल पहले जिस समय खड़ी बोली विकासोन्मुख थी उस समय स्वर्गीय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में सरस्वती ने गद्य की भाषा और शैली का जो परिष्कार किया उसकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती। सरस्वती के द्वारा आचार्य द्विवेदीजी ने हिन्दी के अनेक ख्यातनामा और यशस्वी लेखक तैयार किये। इन लेखकों और कवियों को यदि सरस्वती का संवल नहीं मिला होता तो न इन्हें हिन्दी संसार जान पाता और न ये लोग हिन्दी की सेवा ही कर पाते। हिन्दी का भण्डार उतने अंश तक सूना ही रह जाता। खड़ी बोली में हिन्दी पद्य शैली को सरस्वती से यदि उस युग में उस तरह का प्रोत्साहन न मिला होता तो संभवतः खड़ी बोली में हिन्दी की गद्य शैली का जितना विकास हुआ उतना विकास संभव नहीं था। मैं तो कह सकता हूँ कि खड़ी बोली में गद्य शैली को सरस्वती ने प्रौढ़ता प्रदान की। सरस्वती के लिए यह सौभाग्य की बात थी। उस समय उसे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान सम्पादक की सेवायें प्राप्त थीं और स्वर्गीय श्री चिन्तामणि घोष के समान हिन्दी प्रेमी उदार संचालक मिला था। इन दोनों महानुभावों के संयोग ने हिन्दी की प्रगति के लिए सोने में सुगन्ध का काम किया और सरस्वती भी चमक उठी।

## खड़ीबोली में कविता लिखने की प्रेरणा मिली
### श्री रामनरेश त्रिपाठी

सरस्वती ही से मुझे पहले-पहल खड़ी बोली हिन्दी में कविता लिखने की प्रेरणा मिली थी। जब मैं गाँव के मदरसे में दर्जा ४ में पढ़ता था, तब प्रधानाध्यापक के पास सरस्वती आती थी। प्रधानाध्यापक कवि थे और ब्रजभाषा में समस्यापूर्तियाँ किया करते थे। ब्रजभाषा ही उन दिनों कविता की भाषा थी, जो कविता करनेवालों को आप से आप आ जाती थी। मैं भी ब्रजभाषा में समस्या-पूर्त्तियाँ करने लगा था, जो कविता के तत्कालीन मासिकों, जैसे कवीन्द्र-वाटिका, रसिक-रहस्य आदि में छपती थीं। सरस्वती ही में पहले-पहल मैंने भारत-भारती की कविता पढ़ी और मैं भी खड़ी बोली में कविता लिखने को उत्सुक हुआ था। ब्रजभाषा में मुख्यतः श्रृंगार रस की कविता होती थी। समस्यायें भी प्रायः श्रृंगार रस ही की दी जाती थीं। भारत-भारती ने जैसे मुझे हाथ पकड़कर एक नये रास्ते पर खींच लिया।

जहाँ तक मुझे याद है, मेरी पहली कविता 'हिन्दुओं की हीनता' सरस्वती में छपी थी। द्विवेदीजी ने उसमें शब्दों का कुछ हेर-फेर करके और दो-एक शब्द घटा-बढ़ा

करके उसे छाप दिया था। इससे मुझे मालूम हुआ था कि द्विवेदीजी कितने ध्यान से और हिन्दी की उन्नति के लिए कितनी सच्ची निष्ठा से सरस्वती का सम्पादन करते थे।

१९२४-२५ से मैं ग्राम गीतों के संग्रह में लगा, तब मैंने ग्रामगीत-संबंधी कई लेख सरस्वती में छपाये थे। साहित्य-जगत् में सरस्वती की व्यापकता बहुत बढ़ी हुई थी, इससे मेरे लेखों का देश में सर्वत्र स्वागत हुआ था।

१९३० या ३१ में मेरी एक कविता 'बढ़े चलो' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी, जिसका रूसी भाषा में अनुवाद, पद्य में, हुआ था, जिसे दो-तीन वर्ष हुए मानस के रूसी पद्यानुवादक सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री वरान्निकोव के सुपुत्र ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में आयोजित स्वागत-समारोह में सस्त्रीक गाकर सुनाया था। मेरे पास भी उन्होंने मूल और अनुवाद दोनों को हिन्दी में टाइप करके भेजा था। इसमें विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दी का इतिहास जानने के लिए किस तरह सरस्वती के पुराने अंकों के भी पन्ने-पन्ने उलटकर रूसवालों ने देख डाला था। यह सरस्वती की लोक-प्रियता का एक प्रमाण है; और सम्पादक शिरोमणि द्विवेदीजी के अनुपमेय परिश्रम और हिन्दी को उच्चस्तर पर लाने के लिए उनके प्रयत्नों का एक सुन्दर परिणाम है।

## वाग्देवी का अनुपम प्रसाद

### श्री सियारामशरण गुप्त

मुझे स्मरण है, पहले पहल जब मेरी रचना 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई, तब अपने किशोर मन में आशा, आनन्द और विश्वास का कितना अनुभव मुझे हुआ था। उन दिनों नये लेखक और कवि के लिए 'सरस्वती' में उसकी रचना का प्रकाशन सरस्वती देवी के वरदपाणि के स्पर्श जैसा ही दुर्लभ समझा जाता था।

और अब यह एक निश्चित तथ्य है कि 'सरस्वती' के द्वारा कितने ही कवियों और लेखकों को वाग्देवी का अनुपम प्रसाद वस्तुतः प्राप्त हुआ है। इस प्रकार वह हिन्दी साहित्य के ही इतिहास में नहीं, वरन् अभिनव भारत के इतिहास में भी अपना निश्चित स्थान बना चुकी है। उसके हिन्दी भाषाभाषी सम्पादक और बँगला भाषाभाषी प्रकाशक ने मिलकर विभिन्न भाषियों के बीच की दूरी मिटाने के लिए एक राष्ट्रीय भाषा को भारत के केन्द्र-स्थल तक ऊँचा उठाने का अपूर्व और अप्रतिम कार्य किया है।

आज उसी 'सरस्वती' का हीरक जयन्ती समारोह मनाया जा रहा है। इस अवसर पर मैं अपना हार्दिक अभिनन्दन अर्पित करके कृतज्ञता का अनुभव स्वयं ही कर रहा हूँ।

## सरस्वती का चिर ऋणी हूँ

### डा० वृन्दावन लाल वर्मा

बात सन् १९०० की है, मुझे याद अच्छी तरह है जब मैंने झांसी जिले के मऊरानीपुर नगर में 'सरस्वती' के पहले-पहल दर्शन किये। मेरे विद्यागुरु पं० विद्याधर दीक्षित थे। उनके पास वह अंक देखा था। जहाँ तक स्मरण आता है उसपर छपा था 'सरस्वती सब ही को प्यारी।' फिर कुछ वर्ष पीछे श्री पार्वतीनन्दन (बा० गिरिजाकुमार घोष) की कहानी 'दुलाईवाली' पढ़ी। खरीदकर पढ़ने के लिए गाँठ में पैसे नहीं थे तो कहीं न कहीं से माँगकर पढ़ा करता था।

सरस्वती में (स्व०) द्विवेदीजी की कृपा से मेरा एक लेख १९०८ में छपा था। बड़ा प्रोत्साहन मिला। १९०९ में मेरी पहली कहानी उन्हींकी कृपा से छपी थी। 'सरस्वती' का चिरऋणी हूँ। और इंडियन प्रेस का भी जिसने मेरे तीन छोटे छोटे (बिलकुल ऊटपटांग रहे होंगे वे अब याद नहीं हैं) नाटक १९०५ में, जब मैं नवीं कक्षा का विद्यार्थी झांसी में था, प्रकाशन के लिए स्वीकार किये और मुझे पचास रुपये मनीआर्डर से भेंट किये।

## इससे अनेक लोगों ने हिंदी लिखना सीखा

### श्री संतराम बी० ए०

जिस समय 'सरस्वती' का जन्म हुआ था उस समय हिन्दी की दशा बहुत दुर्बल वरन् शोचनीय थी। दूसरे प्रान्तों की बात तो दूर, स्वयं उत्तर प्रदेश में भी इसे कोई न पूछता था। वहाँ भी उर्दू-फारसी का ही राज्य था। सरस्वती ने अपने सतत परिश्रम से सारा वायुमण्डल बदल दिया। फलतः आज हम हिन्दी को न केवल कुछ राज्यों की राजभाषा देखते हैं, वरन् समूचे भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए भी इसे राष्ट्रभाषा का पद मिलने जा रहा है।

यह सौभाग्य की बात है कि सरस्वती को श्री० महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं श्री श्यामसुन्दर दास जैसे

समर्थ संपादक मिलते रहे हैं। इनके प्रताप से सरस्वती का आदर जनता में दिन पर दिन बढ़ता रहा है।

पुण्यश्लोक द्विवेदीजी के पथप्रदर्शन और सहयोग से मेरे जैसे अनेक लोगों ने हिन्दी लिखना सीखा। सरस्वती ने हिन्दी को उन्नत एवं परिष्कृत करने का जो दुरूह कार्य किया है उसके लिए हिन्दी जगत् सदा इसका ऋणी रहेगा। जिस धैर्य और उत्साह के साथ और जिन उच्चतम एवं उदात्त आदर्शों को लेकर सरस्वती संसार में आई थी उन्हींको लेकर वह आज भी हमारे साथ है।

मैं उसके सुदीर्घ जीवन के लिए––मनुष्य-जीवन की वेद-वर्णित 'शरदः शतम्' मर्यादा के अर्थ में नहीं, वरन् पुण्याह वाचन-समारोह में पढ़े जानेवाले मंत्रों के अमर्याद अर्थ में––शुभ कामना करता हूँ :––

दीर्घानागानदयो गिरयस्त्रीणि विष्णु पदानि च।
तेनायुः प्रयाणेन पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु॥

तुम्हारा जीवन दीर्घ नागों, नदियों, पर्वतमालाओं और श्रीविष्णु के तीन पदों से व्याप्त त्रिभुवन के समान सुदीर्घ हो!

## भाषा के विशाल अरण्य को उर्वर क्षेत्र में परिवर्तित किया

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

'सरस्वती' पत्रिका ने अर्वाचीन हिन्दी साहित्य के निर्माण में और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के योग्य तेजस्विता प्रदान करने में जो अद्भुत योग दिया है उसके लिए यह पत्रिका सचमुच अपना हीरक जयंती-समारोह गौरव के साथ मना सकती है। 'सरस्वती' के मूल में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की तपश्चर्या अंतर्निहित है। उन्होंने भाषा के विशाल अरण्य को उर्वर क्षेत्र में परिवर्तित किया। पाठकों का विस्तृत परिवार तैयार किया। अनेक नये लेखक बनाये। वर्षों से पड़ती पड़े हुए मस्तिष्क उपजाऊ बन गये और हिन्दी की चौमुखी खेती लहलहा उठी। वह हिन्दी के इतिहास का महत्त्वपूर्ण अध्याय ही हो गया है जिसका शीर्षक है 'सरस्वती।' द्विवेदीजी के उस सम्पादन काल में 'सरस्वती' द्वारा पाठकों में अपूर्व मादकता छा गयी थी। जिन्होंने थोड़ा भी वह रस चख लिया था उन्हें और कुछ सुहाया ही नहीं। वर्तमान समाजशास्त्र और राजनीति एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा इन चारों का सजग सम्बन्ध सरस्वती ने हिन्दी साहित्य के साथ जोड़ा। यही हमारे जीवन का स्वस्तिक बना जिसके चतुर्भुज क्षेत्र में राष्ट्रभाषा का विकास हुआ है और होता रहेगा। 'सरस्वती' के उस उदात्त इतिहास का स्मरण हमें उत्तरोत्तर अधिक परिश्रम और केन्द्रनिष्ठा की प्रेरणा देता है।

## हिंदी साहित्य के विकास में सरस्वती का बहुत बड़ा हाथ

श्री भगवतीचरण वर्मा

कानपुर के थियोसाफिकेल स्कूल में मैं पढ़ता था, छठवीं कक्षा में। बात सम्भवतः सन् १९१४ की है। वार्षिक परीक्षा में मैं हिन्दी में फेल हो गया, लेकिन अन्य विषयों में अच्छे नम्बर मिले थे इसलिए प्रमोशन मिल गया। जब स्कूल खुला तो मेरे हिन्दी के अध्यापक श्री जगमोहन विकसित ने मुझे समझाया कि हिन्दी में फेल होना लज्जाजनक है, और मुझे हिन्दी में मेहनत करनी चाहिए। कायस्थ होने के नाते मेरे चारों ओर उर्दू का वातावरण था। मैंने उनसे पूछा किस तरह हिंदी की योग्यता बढ़ाऊँ तो उन्होंने मुझे पुस्तकालय से लेकर हिन्दी पुस्तकों को पढ़ने की सलाह दी और साथ ही 'सरस्वती') मासिक पत्रिका को नियमित रूप से पढ़ने को भी कहा। सरस्वती से प्रथम सम्पर्क उस समय हुआ।

और फिर तो मैं सरस्वती को लगातार पढ़ने लगा। द्विवेदीजी के काल में तो मेरी कोई रचना सरस्वती में प्रकाशित नहीं हो पायी, यद्यपि उन दिनों मन में प्रबल इच्छा थी कि सरस्वती में मेरी कोई रचना प्रकाशित हो जाय। हाँ, बाद में सरस्वती में मेरी रचनाएँ काफी अधिक संख्या में छपीं।

हिन्दी साहित्य के विकास में सरस्वती का बहुत बड़ा हाथ है, हरेक हिन्दी के आलोचक को यह निःसंकोच स्वीकार करना पड़ेगा।

इधर कई वर्षों से सरस्वती ने फिर से परम्परागत हिन्दी साहित्य का नेतृत्व प्राप्त कर लिया है, यह संतोष का विषय है।

सरस्वती की हीरक जयंती के अवसर पर मेरी अनेक-अनेक बधाई और शुभकामनाएँ।

## मेरे जीवन को प्रभावित किया
### श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल

मेरे विद्यार्थी जीवन में आचार्य द्विवेदीजी के संपादकत्व में 'सरस्वती' के लेखों और कविताओं ने मेरे जीवन, मेरे चरित्र और विचारों को बहुत प्रभावित किया है।

## हिंदी-सरस्वती को समृद्ध किया
### श्री यशपाल

"सरस्वती" ने हिन्दी के शैशव काल में ही जन्म लेकर अपनी समृद्धि से हिन्दी-सरस्वती को भी समृद्ध किया है।

## सरस्वती का इतिहास, हिंदी का इतिहास
### श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

'सरस्वती' का इतिहास हिन्दी का इतिहास है। हिन्दी जगत् की जो सेवा 'सरस्वती' ने की है, वह शायद ही किसी और पत्र-पत्रिका ने की हो। मैं १९१५ से 'सरस्वती' का पाठक हूँ। आज भी यदि किसी महीने में उसका अंक डाक में खो जाता है (जो आये दिनों की घटना है!) और मैं उससे बंचित रह जाता हूँ तो मैं एक विकलता अनुभव करने लगता हूँ। बुकस्टाल से खरीदकर मँगवाता हूँ। इतने से ही मेरे 'सरस्वती'—प्रेम का अनुमान किया जा सकता है।

## साहित्य के अभ्युदय और निश्रेयस् का कारण
### पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र

'सरस्वती' का हिन्दी जगत् में आगमन भगवती सरस्वती के आगमन की भाँति साहित्य के अभ्युदय और निश्रेयस् का कारण बना। इस मासिक पत्रिका के कुछ अंकों का दर्शन सबसे पहले मुझे बारह वर्ष की आयु में भाषा के माध्यमिक विद्यालय, घोसी, आजमगढ़ में हुआ था जहाँ मैं गाँव की पाठशाला से ऊपर की पढ़ाई के लिए भेजा गया था। उस विद्यालय के स्वर्गीय प्रधानाध्यापक रामलखन सिंह इस पत्रिका के नियमित ग्राहकों में थे।

सरस्वती के उन अंकों में प्रकाशित सचित्र कविताओं ने मुझ पर जो सम्मोहन डाला उसीसे मैं कवि बन गया। मेरा पिछला प्रायः चार युगों का साहित्यिक जीवन 'सरस्वती' की प्रेरणा में प्रारम्भ हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य का निर्माण बहुत अंशों में सरस्वती की आधारशिला पर खड़ा है। साहित्यकारों को इस पत्रिका से मार्गदर्शन मिला है। भविष्य में भी इसका उत्कर्ष हिन्दी भाषा और साहित्य का उत्कर्ष है।

## सरस्वती से अनुप्राणित
### पद्मभूषण सूर्यनारायण व्यास

सरस्वती की षष्टयाब्दि-पूर्ति राष्ट्रभाषा के लिए गौरवप्रद-घटना है। मैं उन लोगों में से ही एक अकिंचन हूँ जिसने सरस्वती से अनुप्राणित होकर कुछ लिखने का प्रयास आरंभ किया था। आज वह प्रेरणादायिनी-पत्रिका ६० शरद् व्यतीत कर नव-यौवनवती बनी हुई है, प्रगतिशीला है। मैं अपने आपको बधाई देता हूँ कि यह सुदिन देखने का सौभाग्य मिला। सरस्वती स्वयं सरस्वती ही है। आयोजक वर्ग इस महान्-साहित्यिक-सदुनुष्ठान के लिए अभिनंदनीय है।

## हिंदी साहित्य की प्रगति का गौरवपूर्ण अध्याय
### श्री प्रभुदयाल मीतल

हिंदी पत्रकारिता के उपवन में 'सरस्वती' सदाबहार के समान सुशोभित है, जबकि अन्य पत्र-पत्रिकाएँ मौसमी फूलों की तरह खिलती और झड़ती रही हैं। 'सरस्वती' के प्रकाशन का इतिहास हिंदी साहित्य की प्रगति का एक गौरवपूर्ण अध्याय है। ये बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनका महत्त्व तब और भी बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि इस पत्रिका का प्रकाशन एक ऐसे प्रतिष्ठान द्वारा होता है जिसके स्वामी हिंदी भाषा-भाषी भी नहीं हैं। हिंदी को राष्ट्र-भाषा के रूप में आयोजित करने के लिए 'सरस्वती' प्रकाश-पुंज के समान देदीप्यमान है।

## मूर्धन्य स्थान
### श्री सत्यकेतु विद्यालंकार

निस्सन्देह, सरस्वती ने हिन्दी भाषा और साहित्य की अनुपम सेवा की है। इसका प्रकाशन तब प्रारम्भ हुआ था, जब हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक युग था। स्वर्गीय पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी के कुशल सम्पादकत्व में सरस्वती ने हिन्दी लेखकों का पथप्रदर्शन किया, और कितने ही लेखकों ने परिमार्जित भाषा और सुगम शैली का ज्ञान इसी पत्रिका द्वारा प्राप्त किया। वर्तमान समय में हिन्दी भाषा ने जो उन्नति की है, उसका बहुत-कुछ श्रेय सरस्वती को ही प्राप्त है। यद्यपि अब हिन्दी में सैकड़ों

पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी हैं, तथापि उन सब में सरस्वती का स्थान अब भी मूर्धन्य है।

मैं सरस्वती का विशेष रूप से ऋणी हूँ। मेरी प्रथम साहित्यिक रचना सरस्वती में ही प्रकाशित हुई थी, और मेरा प्रथम ग्रन्थ भी सरस्वती के संचालक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद द्वारा ही प्रकाशित किया गया था।

## एक युग की स्थापना

श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु

'सरस्वती' ने हिंदी में एक युग की स्थापना की है, इतना ही उसके महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त समझा जाना चाहिए।

## हिंदी पत्रकारिता की गंगा

श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

'सरस्वती' भी एक पत्रिका ही है और पत्र-पत्रिका पढ़ते, उनमें लिखते, उनका सम्पादन करते मेरा जीवन बीता है, पर उसके हीरक-जयंती-उत्सव का समाचार पढ़कर मुझे लगा कि यह हमारे किसी राष्ट्र-पुरुष की हीरक जयंती का समाचार है। गंगा एक नदी है, पीपल एक वृक्ष है, तुलसी एक पौधा है; है ही, पर इनके प्रति युग-युगों के भाव-चिन्तन से जैसे हमारे मन में एक सजीव, कोमल, पावन भावना बन गयी है, वैसी ही भावना का स्पर्श इस समाचार से मुझे 'सरस्वती' के प्रति मिला। 'सरस्वती' हमारी पत्रकारिता की गंगा है। वह हमारे लिए वन्दनीय है और वे महानुभाव भी, जिन्होंने इस साहित्य-गंगा के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने में अपने परिश्रम और अपनी प्रतिभा का दान किया।

इस पुण्य अवसर पर मैं उन सबके प्रति अपना हार्दिक अभिवादन समर्पित करता हूँ।

## हिंदी के प्रसार में योगदान

श्री महेन्द्र

सरस्वती ने इन ६० वर्षों में हिन्दी का उदय और विस्तार देखा ही नहीं है उसके प्रसार में भी भारी योग-दान किया है। सौभाग्य से मुझे अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ से ही 'सरस्वती' पढ़ने का सुअवसर मिलता रहा है। मैंने द्विवेदीजी, बख्शीजी, शुक्लजी और अब चतुर्वेदीजी की सरस्वती को बराबर देखा है और मैं निस्संदेह कह सकता हूँ कि सरस्वती ने हिन्दी की जितनी सेवा की है, दूसरी किसी पत्रिका ने नहीं की।

## सरस्वती की समृद्धि हिंदी की समृद्धि का पर्याय

डा० सत्यप्रकाश

'सरस्वती' की समृद्धि हिन्दी-समृद्धि का पर्याय है। 'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादकों के पथ-प्रदर्शन में हमारा वाङ्मय विकसित हुआ। इस विकास के विभिन्न चरण यदि देखने हों तो 'सरस्वती' पत्रिका के पृष्ठ उलटिये। जीता-जागता इतिहास सामने आ जायगा। मेरे लिए यह कहना कठिन है कि 'सरस्वती' से मेरा परिचय कब से हुआ। मेरे पिताजी का इण्डियन प्रेस से संबंध पुराना था। अँगरेजी पद्धति पर उनकी लिखी 'हिन्दी व्याकरण' इण्डियन प्रेस ने उस समय छापी जब मैं एक-दो वर्ष का शिशु रहा हूँगा। फिर ६ भागों में पिताजी का लिखा 'हिन्दी शेक्सपियर' इण्डियन प्रेस से छपा। आचार्य द्विवेदी जी के आग्रह पर पिताजी का एक लेख 'शेक्सपियर और देशभक्ति' अथवा इसी प्रकार के किसी शीर्षक से 'सरस्वती' में छपा, तब मैं आठ वर्ष का रहा हूँगा। 'बाल पुस्तकमाला' के अन्तर्गत पिताजी की एक पुस्तिका 'बाल निबन्धमाला' भी इसी प्रेस से प्रकाशित हुई। परिवार के आर्थिक संकट के समय उन दिनों लेखक को दो पैसे मिल जायँ, तो बड़ी बात थी। प्रेस के अधिकारियों ने पिताजी से पशु-पक्षियों के संबंध में २० के लगभग खण्डों में एक रचना और लिखायी, जो संभवतः अब भी पाण्डु लिपि के रूप में अप्रकाशित ग्रन्थों के भण्डार में प्रेस में सुरक्षित पड़ी होगी। मैंने अपने बचपन में 'सरस्वती' में लेख उस समय भेजे जब वे छपने योग्य थे ही नहीं—निज रचना केहि लागइ फीकी। मैं भेजता रहता था, और वे वापस लौट आया करती थी। पर मैं कभी निराश न होता था। 'सरस्वती' के सम्पादकों से मेरा परिचय बचपन में हुआ—देवीदत्त जी, और बख्शीजी से। 'सरस्वती' के देखा-देखी न जाने कितनी पत्रिकायें निकलीं—वे यशस्वी भी हुईं, पर रहीं अल्पजीवी ही। पत्रिकाओं में 'सरस्वती' ही इतनी दीर्घ-जीवी रह सकी। इसका श्रेय इण्डियन प्रेस के मालिकों को, स्वर्गीय चिन्तामणिजी और उनके सहृदय परिवार को है।

'सरस्वती' ने समालोचनाओं का आदर्श प्रस्तुत किया, साहित्यिक समालोचनाओं का भी और हिन्दी संबंधी

नीति का भी। सरस्वती की ये समालोचनायें आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वर्तमान सम्पादक के सम्पादकीय भी प्रांजल, स्वस्थ और हितकर विचारों के प्रतीक हैं। 'सरस्वती' की कठोर आलोचनाओं ने इतिहास में कभी-कभी कटुता भी उत्पन्न की थी, पर वह कटुता क्षणिक ही रही। मुझे स्मरण है कि एक समय द्विवेदीजी की किसी आलोचना पर आर्य समाज उद्विग्न हो उठा था। किसी कर्मठ संस्था का उद्विग्न होना बवंडर के समान है, पर क्योंकि आर्यसमाज भी हिन्दी और हिन्दी साहित्य का परम हितैषी था और 'सरस्वती'-परिवार भी, इसलिए ऐसी कटुतायें शीघ्र ही स्नेह और घनिष्ठता में परिणत होती रहीं। छायावाद और रहस्यवाद की कविताओं के युग में जहाँ एक ओर रूढ़िगत सम्पादक मण्डल ने कटु आलोचनायें कीं, वहाँ दूसरी ओर उस पर परोक्ष में कुछ वरदहस्त भी बना रहा। मैथिलीशरण, रामचरित उपाध्याय और गोपालशरण सिंह के समान कवियों की प्रतिभा का विकास 'सरस्वती' के द्वारा ही हुआ। पद्मसिंह शर्मा ऐसे साहित्य मर्मज्ञ आलोचक भी 'सरस्वती' की ही देन हैं।

बहुत दिनों की बात है, मैं भी कवि होने के स्वप्न देखता था। कविता अब भी करता हूँ——स्वान्तः सुखाय। 'प्रतिबिम्ब' नामक एक संग्रह मेरा प्रकाशित हुआ था। द्विवेदीजी उस समय सम्पादक तो न थे, पर 'द्विरेफ' नाम से सुन्दर समीक्षायें लिखा करते थे। मेरी कुछ पंक्तियों पर उद्विग्न अथवा खिन्न होकर उन्होंने मजेदार लेख लिख डाला जो 'सरस्वती' में मुख्य-लेख की तरह प्रकाशित हुआ। वर्ष भर के साहित्य की इस लेख में समीक्षा थी। मैं इसीलिए प्रसन्न था कि उस वर्ष की किसी कविता-रचना ने द्विवेदीजी का ध्यान आकर्षित नहीं किया, एकमात्र बौछार पड़ी मेरे 'प्रतिबिम्ब' पर। मैंने इसे 'प्रतिबिम्ब' की सफलता माना।

'सरस्वती' में मैंने कम ही लेख लिखे हैं। अपने राजनैतिक जीवन के संस्मरण के सम्बन्ध में कई वर्ष हुए, मैंने एक लेखमाला लिखी थी, जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। 'सरस्वती' में प्रकाशित संस्मरण मुझे सदा पसन्द आते रहे हैं। अपने मित्र ब्रजमोहन व्यासजी के लिखे संस्मरण तो मैं आज भी चाव से पढ़ता हूँ।

'सरस्वती' ने साठ वर्ष पूरे किये, प्रसन्नता की बात है। शतशः बधाइयाँ! कैसे कहूँ, कि साठ वर्ष म "सरस्वती" वृद्धा हो गयी और "बालसखा" इतने दिनों में युवा हो गया। मेरी तो यही कामना है कि "सरस्वती" में शतियों तक युवती माता का सहज सौजन्य और "बालसखा" में शतियों तक शैशव विद्यमान रहे।

### कर्मठता और पांडित्य से समन्वित

### ठा० शिवकुमार सिंह

"सरस्वती" की हीरक जयंती का समाचार पाकर प्रत्येक हिंदी-प्रेमी का उल्लसित होना सर्वथा स्वाभाविक है। वर्तमान और विगत शताब्दियों का संधिकाल हिंदी भाषा और साहित्य तथा देवनागरी लिपि की दृष्टि से बड़ा ही पुण्यकाल सिद्ध हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना और उसीके द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा 'सरस्वती' मासिक पत्रिका की आयोजना हिंदी साहित्य के उन्नयन के लिए बड़ी ही प्रभावशाली और कार्यकारी रहीं।

भगवत्कृपा से 'सरस्वती' को ऐसे सुयोग्य संपादक भी मिले जिन्होंने उसके उद्देश्यों की पूर्ति पर निरंतर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि रखी और उसकी उन्नति के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा। कर्मठता और पांडित्य से समन्वित 'सरस्वती' का संघटन हिंदी साहित्य को आरंभ से ही जिस रूप में अनुशासित और अनुप्राणित करता रहा उसका निर्वाह उसके द्वारा अब तक उसी उदात्त रूप में हो रहा है। हमारी प्रभु से यह हार्दिक कामना है कि 'सरस्वती' पत्रिका आगे भी निरंतर फलती-फूलती रहे और उसके द्वारा भाषा तथा साहित्य का यथावत् कल्याण होता रहे।

### पत्रिका से बढ़कर संस्था

### श्री गुरुभक्त सिंह

सरस्वती अबाध रूप से पिछले ६० वर्षों से निकलती आ रही है। इसके लिए उसके संचालक-प्रकाशक धन्यवादार्ह हैं। सरस्वती के द्वारा हिंदी की अपार सेवा हुई है। इस नाते 'सरस्वती' पत्रिका से बढ़कर संस्था है, और स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी इस संस्था के आचार्य थे। खड़ी बोली में कविता लिखने का आंदोलन प्रारंभ किया मुजफ्फरपुर के अयोध्या प्रसाद खत्री ने, पर उसका सफलतापूर्वक निर्वाह एवं संचालन किया 'सरस्वती' ने। 'सरस्वती' ने अपना लेखक एवं कवि मंडल तैयार किया।

भाषा के परिष्कार-संस्कार का कटु कार्य भी कुनेन की कड़ुवी गोली के समान हिंदी हित की दृष्टि से इसने किया। प्रारंभिक २० वर्षों तक तो यह हिंदी पत्रिकाओं की एक-छत्र रानी रही। हिंदी में इसने विविध साहित्य के प्रचार-प्रसार में पूर्ण योग दिया। हिंदी की पत्रिकाओं में सरस्वती को ही अपनी हीरक जयंती मनाने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है, यह उसके लिए गौरव की बात है और हिंदी संसार के लिए गर्व की बात।

### समाज के उत्थान तथा स्वतंत्रता प्राप्ति में अनोखा स्थान

श्री मिश्रीलाल गंगवाल

प्रयाग से प्रकाशित होनेवाली इस 'सरस्वती' में स्वयं सरस्वती सदा मूर्तिमान रूप में प्रकट रही है जिसके वरदान स्वरूप उसने अपने दीर्घकालीन जीवन में न केवल सफलतापूर्वक हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी पत्रकारिता के विकास में बहुमुखी योगदान दिया, वरन् हिन्दी-प्रेमियों को अपनी ओर प्रभावकरूप से आकर्षित किया। समाज के उत्थान में तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति में इसका एक अनोखा स्थान रहा है। इस देश के विरले ही हिन्दी साहित्य-प्रेमी ऐसे होंगे जिन्होंने इसकी किसी न किसी रूप में सेवा न की हो। इसका संपादन देश के उच्चकोटि के विद्वान् बाबू श्यामसुन्दरदास और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी जैसों की ओजस्वी लेखनी से हुआ है। इस पत्रिका के सुरुचिपूर्ण साहित्य के प्रति श्रद्धा और पढ़ने का लावण्य सदा से हिन्दी जगत् में सजीव रहा है। यह पत्रिका हिन्दी जगत् में सबसे प्राचीन होकर आज भी हिन्दी व्योम में सूर्य की भाँति देदीप्यमान है। इस पत्रिका के लिए हिन्दी जगत् को गर्व है। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि भविष्य में भी इसी भाँति जनमानस के बौद्धिक विकास में "सरस्वती" अपना योगदान देती रहेगी और इसके बीणा के तारों की झंकार से सदा भारतीय जीवन आनन्दित और आलोकित होता रहेगा।

### आधुनिक हिंदी साहित्य की जननी

श्री रामदयाल पाण्डेय

सरस्वती ने आधुनिक हिन्दी-साहित्य की जननी का काम किया है। स्व० आचार्य द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में उसने पत्रिका से कहीं अधिक-संस्था का काम किया। उसकी भूमिका हिन्दी-विश्वविद्यालय के समान रही। उसका गौरवोज्ज्वल इतिहास समस्त पत्रिकाओं के लिए स्पृहणीय रहा।

मैं 'सरस्वती' संस्थापक स्व० घोष महोदय स्व० साधक-सम्पादक एवं आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित करता हूँ।

### आधुनिक हिंदी साहित्य की सरस्वती

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी

'सरस्वती' केवल एक पत्रिका ही नहीं, आधुनिक हिन्दी साहित्य की सचमुच 'सरस्वती' भी है, इसके द्वारा आज के अनेक कृतविद्य कवियों और लेखकों को प्रेरणा और स्फुरणा मिली है।

### अमर रहे साहित्यिक देवी

पं० हरीशंकर शर्मा

'सरस्वती' ने निज जीवन के साठ वर्ष सम्पन्न किये,
हिन्दी को लेखक, आलोचक, साहित्यिक, कवि कुशल दिये।
सचमुच यह आदर्श पत्रिका गौरवमयी-निराली है,
इसने ही हिन्दी की गति-विधि, शैली, सुरुचि संभाली है।
विद्वत्-श्रेष्ठ श्यामसुन्दरजी ने जिसको शुभ जन्म दिया,
उस 'सरस्वती' ने आचार्य द्विवेदी से पीयूष पिया।
अमर रहे साहित्यिक देवी जनता का उपकार करे,
विमल विभूति, रुचिर रत्नों से भाषा का भण्डार भरे।

❀ ❀ ❀





श्री सूरदास जी



श्री गोस्वामी तुलसीदास

# सरस्वती

सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका

[ काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित ]


फरवरी सन् १९०० ई०

भाग १

संख्या २



सम्पादक समिति

बाबू जगन्नाथ दास (रत्नाकर) बी.ए.

बाबू श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

बाबू राधाकृष्णदास

पंडित किशोरी लाल गोस्वामी

बाबू कार्त्तिक प्रसाद खत्री



वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम

मूल्य प्रति संख्या ।-)

इण्डियन प्रेस, प्रयाग

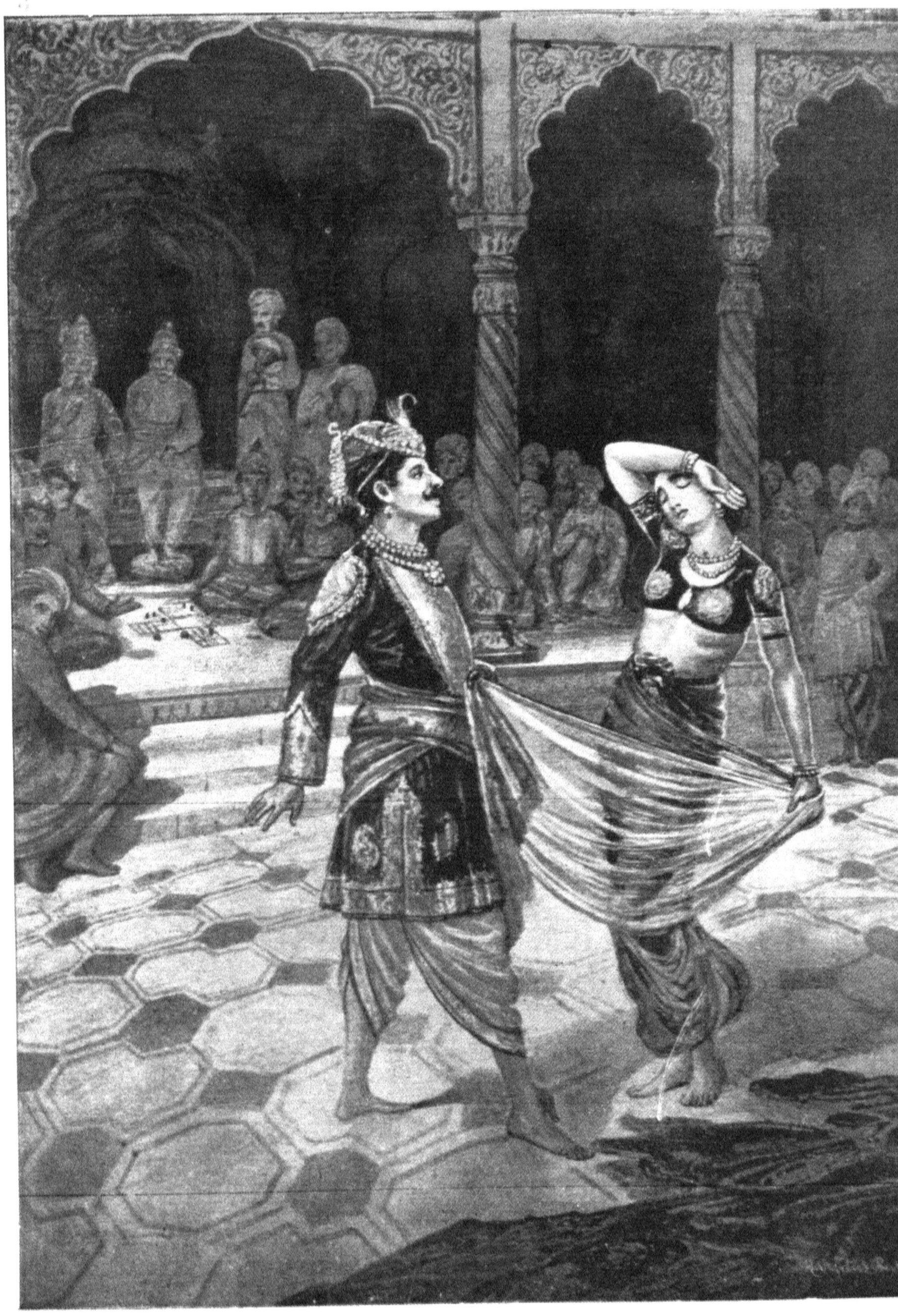
से छप कर प्रकाशित




राजा शिवप्रसाद



भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र



**द्रौपदी-चीरहरण**

(चित्रकार—महादेव विश्वनाथ धुरन्धर) [१६०७



श्रीरामचन्द्र का गंगावतरण
(चित्रकार--महादेव विश्वनाथ धुरन्धर)



# कविता-खंड

●

## बाबू राधाकृष्ण दास

### (१) छप्पन की बिदाई, नये वर्ष की बधाई

(सरस्वती में प्रकाशित पहिली कविता)

दीन, दुखी, आरत, विपत्ति के
मारे भारतवासी।
सहमि उठे सुन कै आगम
छप्पन की, छई उदासी ॥१॥

पण्डित कहैं महाभारत के ग्रह सब
एकत आवैं।
भारत में भारत मचवावैं
महा प्रलय घहरावैं ॥२॥

तिरपन, निरखि प्रतच्छ 'पेशखीमा' की
विकट अवाई।
निहचय भयो भविष्यवाक्य को,
मुंह पर उड़ी हवाई ॥३॥

घोर अकाल प्लेग की ज्वाला
भारत जारन लागी।
राजा, प्रजा त्रस्त भए डोलैं
सबन धीरता भागी ॥४॥

व्यापारी व्यापार बन्द करि
धनी संचि धन राखे।
लौटि प्रवासी निज घर आवैं
धुकुर पुकुर हिय माखे ॥५॥

एक वाक्य ह्वै सबहि पुकारैं
हे करुणामय स्वामी!
रच्छौ नाथ! विपति सब टारौ
हे प्रभु गरुड़ागामी ॥६॥

---

सम्पादक
**श्रीनारायण चतुर्वेदी**

जद्यपि परलय भई न भारत
रक्त नदी सों न्हायो।
तदपि कराल अकाल, प्लेग ने
अतिसय प्रजा सतायो ॥७॥

चलत चलावत पाथर बरसि
फसिल की करि कै ख्वारी।
आश मूल निर्मूल कियो,
छप्पन सब विधि दुखकारी ॥८॥

तापैं, राजा के चिन्ता सों
चिन्तित भारतवासी।
भूलि पेटज्वाला, निद्रा तजि,
निसि दिन रहे उदासी ॥९॥

यों सम्बत छप्पन सताइ
पतझार संग ही भाग्यो।
परम सुखद बसन्त आगम लहि
सब को मन अनुराग्यो ॥१०॥

कोउ कोउ भांति चलो भैया
छप्पन की भई विदाई।
नए बरस की आओ हम सब
हिलि मिलि देंहि बधाई ॥११॥

होय परम शुभ यह सम्बत
मेरे दुख सबै नसावै।
प्लेगहिं मारि अकालहिं जारि
जुद्ध ज्वालाहिं बुझावै ॥१२॥

१९००

(सरस्वती के प्रथम वर्ष के प्रथम दो अंकों में एक भी कविता प्रकाशित नहीं हुई। शायद उस युग में सर्वत्र कविता का प्रचुर प्रचार देखकर 'सरस्वती' ने कविता को विशेष प्रोत्साहन देने की आवश्यकता नहीं समझी थी। पहिली बार तीसरे अंक की 'सरस्वती' में यह कविता प्रकाशित हुई। इस प्रकार इस कविता को 'सरस्वती' की सर्वप्रथम कविता होने का गौरव प्राप्त है। संवत् १९५६ में इस देश में भीषण अकाल पड़ा था। वैसा भयंकर अकाल लोगों की याद में नहीं हुआ था। इसी वर्ष के अन्त में बोअर युद्ध भी समाप्त हुआ था। अतएव यह कविता सामयिक विषय पर थी। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कविता ब्रजभाषा में है। इस कविता में २१ छंद हैं, किन्तु स्थानाभाव से यहाँ उनमें से केवल १२ छंद दिये गये हैं।)

## (२) प्रताप विसर्जन*

(नन्ददास जी के भ्रमरगीत की चाल)

उन्नत सिर गिरिअवलि गगन सों उत बतरावत।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत ॥
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानौ कोउ अवतार
हरन भुव भार को ॥
मुखमण्डल अति शांत कान्तिमय चितवन सोहैं।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारहुं दिसि जोहैं ॥

वीर मण्डली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि।
मनु भीषम सरसयन परे कौरव पाण्डव रहे सोहि ॥
हृदय उमग्यो परै।
लखि निज प्रभु की अंत समय की वेदन भारी।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी ॥
राव सलूमर रोकि निज हिय उदवेग महान।
हाथ जोरि बिनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान
बैन आरत सने ॥
"अहो नाथ अहो वीरसिरोमनि भारतस्वामी।
हिन्दू कीरति थापन में समर्थ सुभ नामी ॥
कहां बृत्ति है आपकी, कौन सोच कहा ध्यान?
देखि कष्ट हिय फटत है केहि संकट में हैं प्रान
कृपा करिकै कहौ।"

---

*महाराना प्रताप की मृत्यु के समय की एक घटना। जिन अमरसिंह की चर्चा इस कविता में है वे महाराना प्रताप के जेष्ठ पुत्र थे और उनके बाद मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। उन्होंने मुगल सम्राट् जहाँगीर से संधि की और वर्तमान उदयपुर नगर की उन्नति की।

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिसि फेर्‌यो।
भरि कै दीरघ सांस सबन तन व्याकुल हेर्‌यो।।
पुनि लखि सुत तन–फेरि मुख अति संतप्त अधीर।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गंभीर
परम आतंक सों।।

'हे हे बीरसिरोमनि सब सरदार हमारे।
हे बिपत्तिसहचर प्रताप के प्रानपियारे।।
तुव भुजबल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ।
मातृभूमि स्वाधीनता कों प्रबल सत्रु करि व्यर्थ।।
अनेकन कष्ट सहि।

प्रानन हू तें प्रिय स्वतन्त्रता कबतें खोई।
हाय आर्यगन भए दास निज गौरव धोई।।
म्लेच्छ बिदेसी सत्रु के दास बनें करि गर्व।
नस्वर तन सुख कारनें आर्य कीति करि खर्व।।
भूलि निज रूप कों।

या प्रताप नें उचित कहौ कै अनुचित भाखौ।
वा स्वतन्त्रता हेतु जगतसुख तृन सम नाखौ।।
ढाइ महल खँडहर किए सुख सामान बिहाय।
छानि बनन की धूरि कों गिरि गिरि में टकराय।।
जनम दुख झेलिकैं।

स्वर्गहु तें बढ़ि जन्मभूमि करि रहित म्लेच्छअरि।
सूखी रोटी अति पवित्र जल, छुधा तृप्त करि।।
सो खोई बहु दिनन की सुख स्वतन्त्रता पाय।
बन्धु बान्धव बीच मैं हम मरत आजु हरषाय।।
क्लेस को लेस नहिं।

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने।
सो अमूल्य निधि मम पाछें रहिहै दिन कितने।।
तुच्छ वासना मैं पग्यो दुःख सहन असमर्थ।
चंचल अमरहिं* देखि कै होत आस सब व्यर्थ।।
सोचि भावी दसा।"

कहि दुखमय ये बचन अमर तन दुख सों देख्यो।
मूंदि नैन जल भरे स्वांस लै सब दिसि पेख्यो।।
सन्नाटा चहुं दिसि छयो सबके मुख गंभीर।
पृथ्वी दिसि हेरें सबै भरे महा हिय पीर।।
बैन नहिं कछु कढ़ैं।

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो।
अभिबादन करि अति बिनीत ये बचन सुनायो।।
"पृथीनाथ! यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज।
कुंअर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज।।
निरासा जो भई।।

बदलि पास कछु संभरि बैन परताप कह्यो पुनि।
अति गम्भीर सतेज मनहुं गुंजत केहरि धुनि।।
"सुनौ बीर मेवार के गौरव राखनहार।
मेरे हिय की बेदना––जो कियो आस सब छार।।
अमर के कर्म नै।

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यौ।
इतनेहि मैं मृग एक आनि कै तहां जु पैठ्यौ।।
हरबराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर।
कुटिया के या बांस मैं फंस्यो पाग को छोर।।
अमर तौहु न रुक्यो।

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जिय मैं धीर छुड़ावै ताको आछे।।
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ।
पटकि पाग लखि झोंपड़िहिं अतिहि क्रोध के साथ।।
बैन मुख तें कढ़े।

"रहु रहु रे निर्बोध अमरगति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे सांस बिना तोहि आजु उजारे।।
राजभवन निर्मान करि तेरो चिन्ह मिटाइ।।
जो दुख पाए तोहि मैं सो दैहौं सबै भुलाइ।।
सुखद आवास रचि।

तबही तें ये बैन सूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख बासना अवसि दुख दिवस बिसारिय।।
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम।
बेचि, सिसोदिय कीर्ति को यह करिहै अवसि निकाम।।
रुके हम सोच एहि।"

हिन्दूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौर्‌यो तब।।
लै लै असि दृढ़ पन कियो, छ्वै छ्वै प्रभु के पाय।
"जो लौं तन, स्वाधीनता तौं लौं रखौं बचाय।।
संक करिए न कछु।"',

*महाराना प्रताप के पुत्र और उत्तराधिकारी अमरसिंह

दृढ़प्रतिज्ञ छत्रिन प्रन सुनि राना मुख बिकस्यो।
आस लता डहडही भई मुख तें यह निकस्यो॥
"धन्य बीर तुम जोग ही यह पन तुम्हहिं सुहाय।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय॥
यहै आसीस मम।"

देखत देखत शांतिसदन परताप सिधाए।
पराधीनता मेघ बहुरि भारत सिर छाए॥
सबही सुख परताप संग कियो बिसर्जन हाय।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गंवाय॥
त्राहि! प्रभु रच्छिए॥

१९०२

## (३) रहिमन विलास

निज कर क्रिया रहीम कहि सुधि भावी के हाथ।
पासे अपने हाथ में दांव न अपने हाथ॥
दांव न अपने हाथ जदपि है हाथ पराए।
पै बिनु कर्मन किए शुभाशुभ फल नहिं पाए॥
भाग्य भरोसे भूलि समय जिनि चूकै रे नर।
होनी होय सुहोय करै कर्तव्य जु निज कर॥

कमला यह न रहीम थिर सांच कहत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥
क्यों न चंचला होय सिंधुतनया चंचलमति।
एकन को करि तुष्ट देइ तजि सहज चपलगति॥
बड़न गिरावै दास धरै छोटन सिर समला।
कोटि जतन किन करौ रहै नाहिन थिर कमला॥

दुरदिन परै रहीम प्रभु दुरथल जैयें भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागै आग॥
जब घर लागै आग सबै मरजाद भुलावै।
समुझि समय को फेर सबै सहतै बनि आवै॥
जैसो समयो देखि रहै तैसो ह्वै तू किन।
मौन होइ सहु दास परै जो कबहूं दुरदिन॥

जाइ समानी अब्धि में गंग नाम भयो धीम।
काकी महिमा ना घटी पर घर गए रहीम॥
पर घर गए रहीम होइ अवसहिं हलकाई।
जदपि न पूंजी तदपि भरम निज गेह सुहाई॥
आधे पेटहि खाइ सहै बरु सरबस हानी।
पर घर धाए 'दास' बड़ाई जाइ समानी॥

जो गरीब सों हित करें धन रहीम वे लोग।
कहां सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥
कृष्ण मिताई जोग कहां शवरी गुह बानर।
तजि दुरजोधन पाक शाक खायो जो बिदुर घर॥
जौन प्रेम मन करै कहा तौ लै अमीर कों।
तेई नर जग धन्य करें हित जो गरीब सों॥

आपु सदा बेकाम के शाखा दल फल फूल।
रोकत जाय रहीम कह औरन के फल फूल॥
औरन के फल फूल रोकि जग अनहित करहीं।
व्यर्थहिं रोकै भूमि भार पृथिवी पर धरहीं॥
आपु करै नहिं काम और कों मारैं आँकुस।
ऐसे जन सों भूलि 'दास' करिए जिन आपुस॥

कुटिलन संग रहीम बसि साधु बचौती नाहिं।
नैना ठैना करत हैं उरज मरोरे माहिं॥
उरज मरोरे माहिं फंसे शिव नारद ज्ञानी।
ओछे संगति बैठि होत बित हित की हानी॥
सबै साधुता दाबि रँगत सहजहिं अपुने रँग।
सत संगत में बैठु दूरि तजु तू कुटिलन सँग॥

हित अनहित सब कोउ कहै की सलाम की राम।
हित रहीम जब जानिए जेहि दिन अटकै काम॥
जेहि दिन अटकै काम न तादिन मुखहिं छिपावै।
आपु सहै दुख कोटि मित्र के काम बनावै॥
बिपति देइ जो साथ मीत जानिय तेहि नित चित।
सम्पद में तौ धाइ बनत सहजही सबै हित॥

१९०२

❀ ❀ ❀

# बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०

## (१) बसन्त

आयो सुन्दर साज साजि ऋतुराज सुहावन।
आयो महि सौभाग्य मंजु मंगलमय पावन॥
आयो सुमन समाज मांझ सोभा को स्वामी।
मन्द पवन मधुदान झरित ऐरावत गामी॥

संजोगिन कों सुखद बियोगिन कों दुखदाई।
उदासीन उर अनियत मौज करन मन भाई॥
जाको प्रवल प्रताप दाप ऐसो जग जाग्यो।
ह्वै चल बिचल हिमाचल ओर चलन रबि लाग्यो॥

बौरे रुचिर रसाल जाल कोकिल कल कूंजति।
बिकसे बारिज बिमल मंजु भृंगावलि गूंजति॥
बन उपवन आराम रम्य सब भांति सुहाये।
नव पल्लव दल फूल फलनि जुत अति मन भाये॥

च्युत पद अत्याचारिन की कीरति लों नित प्रति।
सिसिर सीत घटि सनै सनै मन मोद बढ़ावति॥
रह्यो संध्यो जो रुधिर सीत सों अंग अंगनि मैं।
ह्वै स्वतंत्र पुनि उमगन लग्यो बिबिध ढंगनि मैं॥

सीतल सुखद समीर धीर परिमल बगरावत।
अँट खेलिन करि तरुन तरुनि तन परसत आवत॥
लागत अंग उमंग सहित आरस उपजावत।
पै गुलाब भोरहि चुटकी दै चटकि जगावत॥

बन सोभा बरबसहिं लोचननि लेति लुभाए।
जित जित जात जात रहि तितही तित बिरुझाए॥
किंसुक अवलि अखण्ड एक दिस प्रफुलित राजति।
लखत दूर सों अरुणोदय आभा लों भ्राजति॥

सुमन चाहि उपमा यह चित पर चटक चढ़ी है।
मनु बसन्त किरवान सिसिर तन काटि कढ़ी है॥
एक ओर कचनार चारु संध्या फूली सी।
देखि दुहूँ दिस मति ह्वै चकित रहति भूली सी॥

उपबन मांहि अनार आम कचनार मनोहर।
लहलहात ह्वै हरित भरित फल फूलनि सुन्दर।
इत बागनि में बिबिध सुमन सोभा सरसावत।
जिनको पाइ प्रसंग पौन परिमल लै आवत॥

लखि सब सुखद समाज साज यह परत जनाई।
मानहु नव सम्बत आवन की सजी बधाई॥
चेतन लों जड़ प्रकृति परम प्रमुदित ह्वै हुलसति।
अजगुत कहा उमंग मढ़ै जो मानुष की मति॥

देस देस में मचति मंजु मन मादक होरी।
उड़त अबीर गुलाल चोप सों भरि भरि झोरी॥
चारहुं ओर धमार चारु चैती धुनि गावत।
डफ मृदंग करताल ताल मुहचंग बजावत॥

मित्र मण्डली संग रचत सब नाच रंग में।
उठति उछाह तरंग तरल प्रति अंग अंग में॥
मास दिवस लों रहति धूम याही बिधि छाई।
तब परिवा को होति आनि नव बरस अवाई।

कलस थापि देवी पूजत सब आनँद भीने।
सजत बसन्ती चीर चारु चोपनि जुत झीने॥
नौ दिन लौं सुख सहित सबहि देवी आराधत।
मंजु मनोरथ पूरन को मारग सुभ साधत॥

पुनि नौमी कों महा महा उत्सव जग छावत।
राम जन्म तिथि पाय हृदय अति आनँद पावत॥
तेहि आनँद में उमगि राम पद पंकज उर धरि।
रत्नाकर यह बिनय करत गद्गद स्वर सों ढरि॥

सुभ सम्बत यह होहि सकल सज्जन सुख पावैं।
दुर्मति दारिद रोग रहन जग में नहिं पावैं॥

१९००

## (२) वियोग

लागत न कोऊ हाय ओषधि उपाय नैंकु,
झूठी झाड़ फूंक हू फकीरी परी जाति है।
कहै 'रतनाकर' न बैरी हू बिलोकि सकें,
ऐसी दसा माँहि सो अहीरी परी जाति है ।।

रावरो हू नाम लिएँ नैननि उघारै नाहिं,
आह और कराह सब धीरी परी जाति है।
पीरी परी जाति है वियोग-ज्वाल हू तौ अब,
बिकल बिहाल बाल सीरी परी जाति है ।।

१९२७

## (३) ब्रज-बाला

साधि लैहैं जोग के जटिल जे बिधान ऊधौ
बाँधि लैहैं लंकनि लपेटि मृगछाला हू।
कहै 'रतनाकर' सु मेलि लैहैं छार अंग
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम-पाला हू ।।
तुम तौ कही औ अनकही कहि लीनी सबै
अब जौ कहौ तौ कहैं कछु ब्रज-बाला हू।
ब्रह्म मिलिबै तैं कहा मिलिहै बतावौ हमें
ताकौ फल जब लौं मिलै ना नंदलाला हू ।।

साधिहैं समाधि औ अराधिहैं सबै जो कहौ
आधि-व्याधि सकल स-साध सहि लैहैं हम ।
कहै 'रतनाकर' पै प्रेम-प्रन-पालन कौ
नेम यह निपट सछेम निरबैहैं हम ।।
जहँ प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ
तातैं ब्रह्म रावरे अनूप कौं मिलैहैं हम।
जोपै मिल्यौ तौ तौ धाइ चाय सौं मिलैंगी पर
जौ न मिल्यौ तौ पुनि इहाँ ही लौटि ऐहैं हम ।।

१९३१

❀ ❀ ❀

# पं० किशोरीलाल गोस्वामी

## (१) मलयानिल

(सरस्वती में प्रकाशित खड़ी बोली की पहली कविता)

मधुर मनोहर हास्य-राशि को
लूट किधर से लाए हो?
जो आए, तो बैठो, प्यारे!
कहो, किधर से आए हो?
कुशल कहो, किन किन फूलों से
इस सुगंधि को पाया है?
तरंगिणी के प्राणों को जिससे
उल्लसित कराया है।
कितने तापित जन के मानस को
सब विधि से शीतल कर,
सुधामधुर गीतों को गा गा कर
आए हो; तुम प्रियवर!

रहे कौन से देश, कहो, इतने
दिन तक तुम छाए जी!
यही वासना है सुनने की,
क्यों, न आजलों आए जी!
प्रकृति सती मर मर कर भी
केवल आशा से जीती थी,
विरह-तपाई, कटु औषधि को
आँख मूंद के पीती थी।
सूना घर था, सब मिट्टी था,
कुछ भी न था, तुम्हारे बिन;
सुख के घर तुम दूर पड़े थे,
दिन जाते थे गिन गिन गिन।

स्नेहागार, उदार, प्रकृति-भर्तार,
विनय के पारावार,
प्राणाधार शरद राका के,
चटक चंद्रिका के सुख सार,
कोमल हृदय, सरलमन, पुलकित-
गात, दिव्य गुण राशी हो;
आज कहो सब गुप्त भेद
तुम कौन लोक के वासी हो?
अहा! भुवन में जितने जन हैं,
लगे, पराए हित में, जी!
सब के हो, सिरमौर, अहो! जीवन-
धन! प्रिय, जीवन से भी।
"यह अपना है" और "पराया यह
है" ऐसा ही निःसार,
सभी जगत के लोगों के मन में
है, भरा महा कुविचार।
अपने लिये सभी सुख सम्पति
मान आदि को बाँह पसार;
सदा मांगते हैं, यह कह कर--
"कर पूरी इच्छा करतार!"
किन्तु पराई सुख-समृद्धि को
देख देख उनको, हर! हर!!
चट पट चढ़ आता है, मानो
महा भयानक विषमज्वर!
रहा नहीं हित चिंतन का, अब
किसीके मन में ध्यान कहीं;
सभी स्वार्थ में सने, और
परमार्थ का उनको ज्ञान नहीं।
किन्तु, एक तुम हो, जो परहित-
चिंतन में घूमा करते;
कहीं सवेरे, साँझ कहीं; पर,
कहीं, न, छिन भर थिर रहते।
देते हो, सुख जीवों को, जीवन का
अपने जीवन से;
किन्तु स्वार्थ के लिये, नहीं है
तुम्हें कामनाऽखिल धन से।
प्रायः संसारी जन, सब अवसर पर
श्रेणी-विभाग कर,
छोटे बड़े भेद से, सो भी
समय प, दस को दिखलाकर,
केवल मौखिक दया दिखाते हैं,
वे यश के लिये सदा;
जो परमार्थ-कामना, की, तो किसी-
किसी ने यदा कदा।
अहो! किन्तु, जग में प्रिय! तुमसा
कौन अनोखा दाता है;
स्वार्थ-शून्य हो, दीनों पर जो
सुधा-वृष्टि बरसाता है?
"कोमलतामय, देवों का होता है
हृदय" न कुछ संदेह।
ऐसे शांतिनिकेतन पुण्यधाम का,
करके ध्यान, सदेह,
पाप-पुञ्ज का विनाशकर,
पाते हैं, जीव, अमर-पदवी।
सच है, "ऐसी ज्योति अलौकिक
दर्शन देती कभी कभी"।
दीन हीन लोगों के केवल, वेही
आदरपात्र सदा,
शत रवि, शशी सहस्र, नहीं
पा सकते हैं, उनकी समता।
यही नीति स्वर्गीय तुम्हारी, रीति
अलौकिक यही खरी;
"परसेवा" औ "विश्वप्रीति" ये
दोनों ही हैं सार भरी।
स्वार्थ-पूर्ण इस हृदय हमारे को
प्यारे! अब अपनाओ;
अपनी अद्भुत रीति नीति
इसको भी कुछ कुछ सिखलाओ।
हम तो जीवन्मृत हैं, हमको
अमर करो, हे दयानिधान!
अधम उधारन होकर, फिर क्यों
त्याग चले, करके पहिचान?

पारस मणि के स्पर्श-मात्र से
लोहा, सोना होता है;
गुण यह सत्संगति का, देखो!
सब दुर्गुण को खोता है।
श्याम! गरिमगुणग्राम! पुण्य-
मयनाम! अबाम! अनूप! ललाम!

पूर्णकाम! सुखधाम! अधमआराम!
राम! हे जनविश्राम!
रोग, शोक, दुख, दारिद, मारी, प्लेग,
आदि का खेद हरो;
छेद, मूढ़ता-तिमिर विश्व का,
भारत-भानु-प्रकाश करो॥

१९००

## (२) प्रेमोपहार

(भौंरा और कली)

( १ )
"अरी! तू कौन है, बाला!
कहां से आज आई है?
कि फुलवारी को मथ डाला,
बता, क्या बीन लाई है?"

( २ )
" सुनो जी! मालती, वेली,
जुही, चम्पा-निवारी हैं,
किया सबने था अठखेली,
अली की प्रान प्यारी हैं।"

( ३ )
"बता, तो, क्यों, है, तेरी ओर
मन मेरा खिंचा जाता?
पकड़ते हैं उसे भरजोर
पर वो हाथ कब आता!"

( ४ )
"भला कब तुझको चाहा है?
औ कब बेंचा है मन अपना?
बता, किसने निवाहा है,
दिखाकर नेह का सपना?"

( ५ )
"औ, मैंने जब तुझे चाहा,
तो, मन का खोल के ताला।
प, तूने जब बना, ढाहा,
औ, मटियामेट कर डाला।

( ६ )
"बनाई प्रेमरत्नों की,
बिनागुन गूंथ के माला।
कसर कुछ की, न, यत्नों की,
प, तू ने देख कर, टाला।

( ७ )
"नहीं इच्छा तो जाने दे,
न, हठ देने में करते हैं।
हमारे मन को आने दे,
बिना जिसके कि, मरते हैं।

( ८ )
"अकेले हम जगत में हैं,
पड़े हैं, एक कोने में।
न, लेने हैं, न, देने हैं,
तो डर क्या जान खोने में!

( ९ )
"हैं, अपने भाग ऐसे ही,
कि, जो अपने थे, वे भी सब।
किनारे हो गए; क्या ही
दिखाया है समय ने अब"।

( १० )
"अकेले जन्म ही धारा,
मिलेगा दूसरा, तब क्यों?
जो अपने आपको मारा,
तो फिर, जंजाल यह सब क्यों?"

( ११ )

"है, आशय यह कि, जब तूने
विसारा हमको, तब सबने।
किया अपराध क्या हमने
लगें, जो सब से यों दबने?

( १२ )

"करेगी सुध, मुझे जब मार-
कर, रो रो, बलाएँ ले।
तो, देगा—'प्रेम का उपहार'—
धीरज तुझ को; यह ले ले!"

१९००

## (३) कोकिलाष्टक में से

(भाषा-पद्यानुवाद-समेत)

येनानन्दमये वसन्तसमये, सौरम्यहेलामिलद्–
भृंगालीमुखरे रसालशिखरे, नीताः परा वासराः।
आकालस्य वशेन कोकिलयुवा, सोऽप्यद्य सर्वा दिशो
भ्राम्यद्वायसचंचुघातविदलन्मूर्द्धा मुहुर्धावति॥

सवैया

जाने सुगन्धसने मदआते,
बसंत के भृंगन सों सरसायो।
सुन्दर साल रसालन ही पै,
सदा सुख सों निज द्यौस गँवायो।
सोई दसोहूं दिसान में कोकिल
भागहि तें भ्रम भूरि भुलायो।
कागन के इन चोंचन की
सिर ठोकर खात फिरै भरमायो॥

१९०१

## (४) गङ्गावतरण

"तरलित तुमुल तरंगवती सुरधुनी सुशीला।
करत पुनीत व्योमपथ उतरति है करि लीला॥
सावधान दिक्कुञ्जर, धरा! तुह सुधि इति दै।
रे फनीस! धरु याहि; कमठ! ताही मधि चित दै॥
हैमवती यह बहिन उमा की बड़ी पुनीता।
आवत, पापपुञ्जजन सुगति देन मनचीता॥
हटो, बचो रे गगनबिहारी! मारग छोरौ।
नतकंधर से विनय सहित तृन ह्वै तृन तोरौ॥
भानुवंस अवतंस महाभागवत भगीरथ।
कियो नाम तूहने या छिति पै सुभ तीरथ॥
अब राजर्षि! तपस्या तेरी यह फल लाई।
सजग होउ शिव!" गगन गिरा यों भाषि थिराई॥
जहं लगि हो अवकाश ब्योमभारती समोई।
बढ़ी प्रतिध्वनि आघात प्रतिघात विलोई॥
डगमगान दिक्कुञ्जर, धरनी डोलन लागी।
शेष सगमगाने, कच्छप की थिरता भागी॥
देवासुर नर नाग चराचर सरकि सकाने।
जलचर थलचर नभचर कंपितगात चुपाने॥
पाइ विपुल अवकाश आज आकाश शब्दमय।
कियो नाम निज सत्य, भाषि 'गंगे! जय जय जय!!'
कोटि भानुगति गर्व खर्व करि धाई गंगा।
पितागेह तजि ब्योमबीथि मधि आई गंगा॥
ठठकि एक छन गगन मध्य मुसुकाई गंगा।
चितै शंभु निज गति की बात सुनाई गंगा॥
"हे हे भाम*! भवानीपति! मम बेग न जानहु।
क्यों बरबस मम भार सहन को तुम हठ ठानहु॥
सहित तुम्हिं कैलास भेदि पाताल सिधैहौं।
निज छोटी भगिनी कों तव मुख कहा दिखैहौं॥
या बावरे भगीरथ की मति पै तुम भूले।
मसक होइ नग गहन चले, दैवहि प्रतिकूले॥

---

* भामिनीपति

अस्तु, होहु तुम सजग ; " भाषि यों अहमिति बानी ;
नभमंडल ते बेगहिं धाई, चितै भवानी ।।
सुनत ब्यंगमय अहमिति बचन विषमलोचन यों ।
तमकि उठे रिस घोरि मूर्त्ति धरि कोप पुंज ज्यों ।।
चांपि पगनि कैलास, रौद्रवपु कटि कर दीन्हे ।
पृष्ठभाग में जुगल करन निज शूलहि लीन्हे ।।
फट फटाइ निज जटा, तिहूं लोचन रिस बोरे ।
ज्वाला-माला-भीषन आनन ओप अथोरे ।।
करि ऊंचे मस्तक गंगा दिसि नैन तरेरे ।
वाकी बेगवती तरलित गति हूं को हेरे ।।
अभिमानिनि के गर्व खर्व करिवे हित ठाढ़े ।
मूर्त्तिमन्त रस रौद्र मनहुं छिन छिन प्रति बाढ़े ।।
विनय सहित ठाढ़े ह्वै राजा चितव संभु दिसि ।
अति सकात निज हृदय मध्य लखि संकर की रिसि ।।
कबहुं कबहुं गंगा की गति हूं पै दृग फेरत ।
पुनि तामस अधिदैवहु की मानस-मति हेरत ।।
नदी हूं करि कोप ठरी चितवत सिव पाहीं ।
मनहुँ आज वाहू के रिसि की सीमा नाहीं ।।
पारवती दै ठेस पीठ नन्दी की ठाढ़ी ।
चितवति गंगादिस, धरकति छाती अति गाढ़ी ।।
मनहु बेग धारा में निज गतिपुंज मिलावति ।
वायुवेग प्रति छिन पाछे करि उतरति आवति ।।
मुदित नैन, सिथिलित सुअंग वर बलित बसन तन ।
खलित केस अति ललित छटा छिटकति चहुं प्रति छिन ।।
वह धावत आवति मुनिजन-मानस हरखावत ।
कै वाकी दिसि यह भूगोल गेंद सो धावत ।।
कोटि कोटि घन नादनि सों करि यह दिग कम्पित ।
गिरी शम्भु की जटा मध्य गंगा करि झम्पित ।।
घूमन लागी जटा जूट घनगहन मध्य वह ।
चकित गर्व करि सर्व सकुच तन चसक नव्य वह ।।
थर थराय मन में सकाइ सिरनाइ सोच तें ।
बिनवन लागी सिवहिं शैलवाला सकोच तें ।।
इत राजर्षि भगीरथहू विनती अति कीन्ही ।
तब तजि कोप शंभु गंगा की धारा दीन्ही ।।
दिव्य सुरथ पै चढ़े भगीरथ आगे धाए ।
पाछे भागीरथी चली चित चोप चढ़ाए ।।

गर्जति डफनति झूमति हहहराति तट तोरति ।
अनगिनतिन जनपद पद धौत करति छिति बोरति ।।
जन्हु रिषी के आश्रम को जलप्लावन कीन्हों ।
तब मुनि रिस करि गंगधार सारी पी लीन्हों ।।
पै जब बहुरि करी विनती राजा कर जोरे ।
तब जान्हवीधार काननि ते जन्हुहि छोरे ।।
मिली धार वा सगर सुवन की राख बहाई ।
सागर सों मुरि कपिलमुनी के पग सिर नाई ।।
ब्रह्मशाप तें छूटि गए सुरधाम सगरसुत ।
"जय गंगे जय गंगे" यों कहि कहि तेहि विनवत ।।
जब आई गंगा छितिपै मंगल की मूला ।
भए चराचर मुदित मिटे सब के मनसूला ।।
हरी भरी धरनी धरनी यह हरि की सोहति ।
निज नव जोवन की छन छटा छिटकि मन मोहति ।।
नवजुग मानो छयो जगत में याकें आए ।
पै 'मातगंगे !' अब का लखियत मुंह बाए ! ! !
तू कहुं जाइ बिलाई, कैसी बनि सचुपाई ?
हाय भयो यह कहा ! अंब ! गंगे ! लखु आई ! ! !
रहे न अब राजर्षि भगीरथ राम न राजा ।
नहिं ब्रह्मर्षि जन्हु, कुलगुरु वशिष्ट महराजा ।।
त्रेता द्वापर बीति अमल कलजुग को आयो ।
हाय ! पराधीनतापाश भारतहि बंधायो ।।
विचरे जहं ब्रह्मर्षि, कोटि राजर्षि राजगन ।
वह भारत पददलित भयो म्लेच्छन के घन घन ।
उलट फेर अति भयो हाय गंगे ! या भूपर !
तू छिति छोरि गई पताल, कै धाई ऊपर ! ! !
'भारत भारत' नाम आज आरत ह्वै बाँचो ।
साँचो सब कछु गयो, ठाठ रहिगो अब काँचो ।
इन्द्रप्रस्थ अयोध्या मथुरा भूरि नसानी ।
महा महा जनपद की अब ना रही निसानी ।।
गजनी की आसुरी अनीक नीक सब नास्यो ।
अन्धकार में पर्‌यो देस को देस उजार्‌यो ।।
स्वामी ह्वै बहु बने दास दासी भारतजन ।
आरज सों बरजोरी यवन भए अनगिनतिन ।।
भाई भाई को तजि दीन्हों तनय बाप को ।
शिष्य गुरू को, पत्नी पति को, जीव जाप को ।।

गिरो भयानक बज्राघात धर्म पै आई।
हंसी खुसी सब भगी, मची चहुं हाय रोवाई॥
ढहे देवमन्दिर अपार द्विज मारे कोटिन।
वाल वृद्ध वनिता जन के सिर कटे अनगिनतिन॥
ईंट यहां की मक्के में जा लगी निगोंड़ी।
मन्दिर के सामान यवनगन मसजिद जोड़ी॥
धन, जन, बल, पुरुषार्थ, सत्य सब नस्यो यहां को।
सब सोवत हैं, नहिं जानत धन गयो कहां को?
वधे पिथोराराय गए सब सूर अहेरी।
भयो क्षत्रकुल ध्वंस हाय लागी नहिं देरी॥
राख, हाय, पद्मावति की मिलि गई पवन में।
धन्य अहो! परताप! सीस नहिं नयों यवन में॥
कोटि वीर, अनगिनत वीरवाला सब नासी।
हाय कितै सोवति है तू गंगे सुखरासी?
कब लैहैं अवतार कल्कि भगवान बतावहु?
छोरि आपुनी नींद, मात! गंगे इत आवहु।
छल बल कै कल करि भारतजन बेगि जगावहु।
समल अमल करि हृदय निजत्व तिर्नाहि समझावहु॥
धन, बल, विद्या, विनय, नीति, वाणिज्य, शिल्पबहु।
सीखहिं भारतवासी जन, जार्नाहि निजत्व यहु॥
पाइ सबै निज निज निजत्व भारतवासी जन।
"जय गंगे! जय गंगे! जय जय" भाषहिं प्रति छिन।

१९०२

❀ ❀ ❀

# पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

## (१) द्रौपदी-वचन-बाणावली

(किरातार्जुनीय के प्रथम सर्गान्तर्गत युधिष्ठिर से द्रौपदी की उक्ति)

( १ )

धर्मराज से, दुर्योधन की,
इस प्रकार, सुन सिद्धि विशाल,
चिन्तन कर अपकार शत्रुकृत,
कृष्णा कोप न सकी सँभाल।
क्रोध और उद्योग बढ़ाने—
वाली, तब, वह, गिरा रसाल
महीपाल को सम्बोधन कर
बोली युक्तियुक्त तत्काल॥

( २ )

आप सदृश पण्डित के सम्मुख
निपट नीच नारी की बात
तिरस्कारकारक सी होती
है हे नरपति-कुल-विख्यात!
वस्त्र-हरण-आदिक अति दुःसह
दुःख, तथापि, आज, इस काल,
बार बार प्रेरित करते हैं
मुझे बोलने को भूपाल!

( ३ )

तेरे ही वंशज महीप-वर
सुरनायक सम तेज-निधान
जो धरणी अखण्ड, इस दिन तक,
धारण किए रहे, बलवान।
हा हा! वही मही निज कर से
तूने ऐसे फेंकी आज,
सिर से हार फेंक देता है
जैसे महा-मत्त गजराज!

( ४ )

कपटी, कुटिल मनुष्यों से जो,
जग में, कपट न करते हैं,
वे मतिमन्द, मूढ़ नर, निश्चय,
पाय पराभव मरते हैं।
उनमें कर प्रवेश, फिर, उनको
शठ यों मार गिराते हैं,
कवच-हीन तनु रो ज्यों पैने
बाण प्राण ले जाते हैं॥

( ५ )

हे साधन-सम्पन्न नराधिप !
हे क्षत्रिय-कुल-अभिमानी !
कुलजा, गुण-गरिमा-वशंवदा यह
लक्ष्मी सब सुख-खानी।
तुझे छोड़कर अन्य कौन नृप
इसको दूर हटावैगा;
अपनी मनोरमा रमणी सम
रिपु से हरण करावैगा ?

( ६ )

हे महीप ! मानी नर जिसको
महा-निंद्य बतलाते हैं,
उसी पन्थ के आप पथिक हैं;
नहीं परन्तु लजाते हैं !
कोपानल क्यों नहीं आपको
भस्मीभूत बनाता है ?
सूखे शमीवृक्ष को जैसे
ज्वाला-जाल जलाता है।।

( ७ )

यथासमय जो कोप अनुग्रह
को प्रयोग में लाते हैं,
स्वयं देहधारी सब उनके
बशीभूत हो जाते हैं।
कोध हीन नर की रिपुता से
कोई भय नहिं पाते हैं;
तथा मित्रता से, वे उसको
आदर भी न दिखाते हैं।।

( ८ )

चन्दन-चर्चित-गात भीम जो
रथ ही पर चलता था तत्र,
धूलि-धूसरित वही, विपिन में,
पैदल फिरता है सर्वत्र !
क्या तव मन, इस पर भी, पीड़ित
होता नहीं, पाय सन्ताप ?
सत्यशील बनकर अनर्थ यह
हाय ! कर रहे हैं क्या आप ?

( ९ )

देवराज सम जिस अर्जुन ने
उत्तर कुरु सब विजय किया,
करके, हे नृप ! तुझे अकृत्रिम
अतुलित धन-उपहार दिया।
तेरे लिये, वही, अब, हा हा !
तरु के बल्कल लाता है !
इसे देखकर भी क्या तुझको
कुछ भी क्रोध न आता है ?

( १० )

यहां महीतल पर सोने से,
मृदुल गात हो गया कठोर !
वनगज तुल्य देख पड़ते हैं !!
जटा लटकती हैं सब ओर !!!
नकुल और सहदेव युग्म की
ऐसी दुर्गति देख नरेश !
क्या तू शेष नहीं कर सकता
अब भी अपना धैर्य-विशेष ?

( ११ )

हे नृप ! तेरी मति-गति मेरी
नहीं समझ में आती है;
चित्तवृत्ति भी किसी किसी की
अद्भुत देखी जाती है !
तेरी प्रबल आपदाओं का
चिन्तन करती हूं मैं जब,
मनस्ताप से फट जाता है
यह मेरा हृदय-स्थल तब !

( १२ )

मूल्यवान मञ्जुल शय्या पर
पहले निशा बिताता था;
सुयश और मङ्गल-गीतों से
प्रात जगाया जाता था।
वही, आज तू कुश-काशों से
युक्त भूमि पर सोता है !
श्रुति-कर्कश शृगाल-शब्दों से
हा हा ! निद्रा खोता है !!

( १३ )

द्विज-भोजन से बचा हुआ, शुचि,
षटरस अन्न, पुष्टिकारी
खाकर, जिसने, इस शरीर को,
पहले किया मनोहारी।
भूप! वही तू, आज, उदर निज
वनफल खाकर भरता है;
यश के साथ देह भी अपना
हा हा हा! कृश करता है!

( १४ )

रत्न-खचित - सिंहासन ऊपर
जो सदैव ही रहते थे;
नृप-मुकुटों के सुमन-रजःकण
जिनको भूषित करते थे।
मुनियों और मृगों के द्वारा
खण्डित-कुश-युत वन भीतर
अहह! नग्न फिरते रहते हैं
वैही तेरे पद मृदुतर!

( १५ )

यह विचार कर कि यह दुर्दशा
वैरी ने की है भूपाल!
हृदय समूल उखड़ जाता है;
पाती हूं मैं व्यथा विशाल!
जिन मानी पुरुषों का विक्रम
हर नहिं सके शत्रु-कुल-केतु,
उनकी ईश्वर-दत्त हार भी
होती है सुख ही का हेतु॥

( १६ )

मुझ पर करके कृपा वीरता
धारण करिए फिर इस बार;
क्षमा छोड़िए, जिसमें रिपु का
होवे नृप! सत्वर संहार।
षड्रिपु-नाशक सहनशीलता
निस्पृह मुनियों ही के योग्य;
भूपालों के लिये सर्वदा,
वह, सब भाँति, अयोग्य अयोग्य॥

( १७ )

तेरे सम तेजोनिधान नर
यशोरूप धन के धनवान,
हे महीप! अरि से पाकर भी,
यदि ऐसा दुःसह अपमान।
बैठे रहैं, शांतचित, धारण
किए हुए सन्तोष महान,
तौ हा हा! हत हुआ, निराश्रय,
मानवान पुरुषों का मान!

( १८ )

तुझे तुच्छ जँचते हैं यदि ये
शौर्य-आदि शुभगुण - समुदाय;
क्षमा अकेली सतत सौख्य का
मूल जान पड़ती है हाय!
तौ यह राज-धर्म्म का सूचक
वीरोचित कोदण्ड विहाय,
यहीं अखण्ड अग्नि की सेवा
करता रह तू जटा बढ़ाय!

( १९ )

कपट कर रहा है रिपु, इससे,
तुझ तेजस्वी को महिपाल!
पालन करना नहीं चाहिए
पूर्व-प्रतिज्ञा-प्रण, इस काल।
अरि पर विजय चाहनेवाले
धराधीश बल-बुद्धि-निकेत
विविध दोष की हुई सन्धि में,
दिखलाते हैं युक्ति-समेत॥

( २० )

दैवयोग से दुःखोदधि में
तुझ डूबे को यह आशीष
शत्रु-नाश होने पर लक्ष्मी
मिलै पुनः ऐसे अवनीश!
जैसे प्रातःकाल सिन्धु में
मग्न हुए दिनकर को, आय,
तिमिर-राशि हटने पर, दिन की
शोभा मिलती है, सुख पाय॥

( २१ )

भारविरूपी कवि-सविता की
कविता विद्वज्जन की प्राण,
अति उद्‌भट, अति अगम, मनोहर,
महा - अलौकिक - अर्थ - निधान।

मुझ अतिशय अल्पज्ञ अज्ञ कृत
यह उसका जघन्य अनुवाद
अनुशीलन कर हे रसज्ञजन!
करिए मेरे क्षमा प्रमाद॥

१९००

## (२) हे कविते!

( १ )

सुरम्यरूपे! रस-राशि-रंजिते!
विचित्रवर्णाभरणे! कहां गई?
अलौकिकानन्दविधायिनी महा-
कवीन्द्र-कान्ते! कविते! अहो कहां?

( २ )

कहां मनोहारि-मनोज्ञता गई?
कहां छटा क्षीण हुई नई नई?
कहीं न तेरी कमनीयता रही;
बता तुही तू किस लोक को गई?

( ३ )

नहीं कहीं भी भुवनान्तराल में
दिखा पड़ै है तव रम्य-रूपता।
सजीव होती यदि जीव-लोक में
कभी कहीं तो मिलती अवश्यही॥

( ४ )

सती हुई क्या कवि-कालिदास के
शरीर के साथ तभी अनाथ हो?
विलुप्त किम्वा भवभूति-सङ्ग ही
हुई मही से, अवलम्ब के बिना?

( ५ )

प्रयाण तूने तब जो नहीं किया,
विराजती भूतल में रही कहीं।
अवश्य श्रीहर्ष-शरीर गोद ले,
सहर्ष तू साथ गई, गई, गई॥

( ६ )

हुआ पुनर्जन्म फिरङ्ग-देश में;
परन्तु सो भी कुछ काल के लिये।
पता वहां भी मिलता नहीं हमें;
बता कहां है अब तू मनोरमे!

( ७ )

नितान्त अन्धों पर भी कभी कभी
कृपावती होकर हे सुलक्षणे!
सदैव तू तन्मुख-मन्दिर-स्थिता
प्रकाशती है निज सर्व सम्पदा।

( ८ )

सुनेत्रधारी यदि तू चहै नहीं;
अनेत्रियों का न अभाव हिन्द में।
अतः उन्हींसे चुन एक आध को
कृपाधिकारी अपना बना, बना॥

( ९ )

कभी कभी तू अब भी दयाधने!
दया करै है इस दीन देश पै।
महान्महाराष्ट्र विशाल-वङ्ग में
विलास तेरा कविते! कल्ही हुआ॥

( १० )

मनुष्य सारे सम हैं तुझे सदा;
विचारती जाति न पांति तू कभी।
इसी लिये दोष तुझे न दे सकैं;
अनेक-दोषाकर हाय! हैं हमी॥

( ११ )

अनन्तवर्षावधि तू यहां रही;
तथापि तेरा कुछ ज्ञान ही नहीं।
विचित्रता और विशेष क्या कहैं?
कृतघ्नता का बस अन्त हो गया॥

( १२ )

अभी हमैं ज्ञात यही नहीं हुआ,
रही किमाकारक हे रसात्मिके!
स्वरूप ही का जब ज्ञान है नहीं;
विभूषणौं की तब क्या कहैं कथा?

( १३ )

तुकान्तही में कवितान्त है—यही
प्रमाण कोई मतिमान मानते।
उन्हैं नहीं काम कदापि और से;
अहो महा-मोह! प्रचण्डता तव॥

( १४ )

कवीश कोई यमकच्छटामयी
महा-घटाटोपवता सुचोलिका।
बनाय नानाविध हे विचक्षणे!
तुझे वशीभूत हुई विचारते॥

( १५ )

सदा समस्या सबको नई नई
सुनाय कोई कवि पाय पूर्तियां।
तुझे उन्हीं में अनुरक्त मान, वे
विरक्त होते नहिँ; हा रसज्ञता!

( १६ )

कहीं कहीं छन्द; कहीं सुचित्रता;
कहीं अनुप्रास-विशेष में तुझे।
सुजान ढूंढ़ै अनुमान से सदा;
परन्तु तू काव्य-कले! वहां कहां?

( १७ )

सकैं तवाकार बनाय भी यदि,
वृथा परिश्रान्ति तथापि सर्वथा।
बताइए, जीव-विहीन-देह से
सजीव की सुन्दरि! क्या समानता?

( १८ )

विचार ऐसे जगदम्ब हैं जहां,
न दर्शनौं का तव आसरा वहां।
अजेय इच्छा उस ईश की; उसे
मिटाय देवै, यह शक्ति है किसे?

( १९ )

विडम्बना जो यह हो रही तव,
समूलही भूल उसे दयामयि!
पधारने की अभिलाष होय जो,
न आव तौभी कुछ काल लौं यहां॥

( २० )

अभी मिलैगा व्रज-मण्डलान्त का
सु-भुक्त-भाषामय वस्त्र एकही।
शरीर-सङ्गी करके उसे सदा,
विराग होगा तुझको अवश्यही॥

( २१ )

इसी लिये ही भवभूति-भाविते।
अभी यहां हे कविते! न आ, न आ।
बता तुही कौन कुलीन कामिनी
सदा चहैगी पट एकही वही?

( २२ )

सुरम्यताही, कमनीय कान्ति है;
अमूल्य आत्मा, रस है मनोहरे!
शरीर तेरा, सब शब्द मात्र है;
नितान्त निष्कर्ष यही, यही, यही॥

( २३ )

हुआ जिन्हौंको यह तत्व ज्ञात,
तुझे वशीभूत वही करैंगे।
विलम्ब से वा अविलम्ब से वा
दया उन्हीं पै तव देवि! होगी॥

( २४ )

कुछ समय गए पै योग्यता जो दिखावै
सदय-हृदय होके तू उसीके यहां आ।
न उचित अबला का नित्य स्वच्छन्द-वास;
बस अधिक कहैं क्या? हे महा-मोद-दात्रि!

१९०१

## (३) सेवावृत्ति की विगर्हणा

चाहै कुटी अति घने बन में बनावै;
चाहै बिना नमक कुत्सित अन्न खावै।
चाहै कभी नर नए पट भी न पावै;
सेवा प्रभो! पर न तू पर की करावै॥
सेवा-समान अति-दुस्तर-दुःखदायी,
दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई।
जीना कभी न उसका जग में भला है,
जो पेट-हेत पर-सेवन को चला है॥
स्वातंत्र्य-तुल्य अति ही अनमूल्य रत्न,
देखा न और बहु वार किया प्रयत्न।
स्वातंत्र्य में नरक-बीच विशेषता है;
न स्वर्ग भी सुखद जो परतंत्रता है॥
जो आत्मभाव अपना गिरि से गिरावै;
मानापमान कुछ भी मन में न लावै।
जो शीश नीच-नर-सम्मुख भी झुकावै;
सेवा वही कर, किसी विध, पार पावै॥
निद्रा, क्षुधादिक न जो जन जानते हैं,
न प्रात, रात, दिन जो पहचानते हैं
जो मौन, दुर्वचन भी सुन, ठानते हैं,
स्वातंत्र्य खो कर वही सुख मानते हैं॥
कोई कठोर यदि बात उसे कहै है,
कुत्ता कभी न फिर पास खड़ा रहै है।
दुर्वाक्य बाण सह जो न करैं विचार,
धिक्कार क्यों न उनको दश लाख वार॥
जो श्वान के सदृश सेवक मानते हैं,
वे तुल्यता न करना नर जानते हैं।
कुत्ता कहां सकल काल यथेच्छचारी,
विक्रीत-जीवन कहां जन दास्यकारी!
पूजा यथा-समय न प्रभु-नाम-जाप;
होता शरीर-सुख से न कभी मिलाप।
न स्वार्थही न परमार्थ-विचार-बात;
सेवा किए सब सुखौं पर वज्रपात॥
सौम्य-स्वरूप शिव ने सिर पै बिठाया
सर्व प्रकार अति आदर भी दिखाया।
तौ भी महा-कृश कलाधर की कला है;
हा हा! पराश्रय नहीं किसको खला है?
आलस्य-लीन, शुचि-सज्जनता-विहीन;
अन्तर्मलीन, पर-पीड़न में प्रवीण।
रे दैव! दण्ड मन जो कुछ और आवै,
ऐसे प्रभु-प्रवर से पर तू बचावै॥
१९०२

❀ ❀ ❀

# म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी

## वन-बिहार-पञ्चपदी

पिया हो कसकत कुस पग बीच——
लखन-लाज सिय पिय सन बोली हरुए आइ नगीच॥१॥

सुनि तुरन्त पठयो लखनहिं प्रभु
जलहित दूरि सुजान।
लेइ अंक सिय जोवत कुस कन
धोवत पद अँसुआन॥२॥
बार बार झारत कर सों रज
निरखत छत बिललात।
हाय प्रिये मान्यो न कह्यो, लखु
नहिं बन बिच कुसलात॥३॥
सहस सहचरी त्यागि सदन मधि
सासु ससुर सुख कारि।
हठ करि लगि मो संग सहत तुम
हा हा! यह दुख भारि॥४॥
कहत जात यों प्रभु बहु बतियां
तिया पिया की छांह।
देइ गलबहियां चली विहँसि कहि
यह सुख नाथ अथाह॥५॥

नाथ कुस साथरी साथ सुहाई—
जो सुख सुखनिधान निसि पाई सों क्यों हूं न कहाई ।।१।।
चहल पहल निसि राज महल बिच
चेरिन को समुदाई।
सासु ससुर के अदब न दबकत
दुसह तुम्हार जुदाई ।।२।।
मनभावन मन भावत बतियां
बतराईं तहँ नाहीं।
तातें तहं तें सौगुन सुख बन,
विहरत दै गलबाहीं ।।३।।
गगन भगन-सोभा मन-लोभा
देखत नखत निकाई।
जा छबि आगे सीस महल की
पबि छबि प्रगट फिकाई ।।४।।
आलस तजि आरसी विलोकहु
मंगल द्विज जुति भाई।
बिनु गुन माल भली छबि पिय हिय
कहि सिय मुरि मुसुकाई ।।५।।

पिया जब देखी मैं फुलवरियां—
अस मन भयो धाइ गर लागौं त्यागि सकल कुल गलियां ।।१।।
लखन लाल मोहिँ सेष सों लागे
बिष सी संग की अलियां
लाज भुअंगिनि हंकरति बाढ़ी
निरखि बाग के मलियां ।।२।।
मन चाह्यो पिय संग संग डोलूं
चुनूं कुसुम की कलियां।
गूंथि गूंथि अभरन पहिराऊँ
करि पिय संग रंगरलियां ।।३।।
मन महँ धँसी सांवरी सूरति
फँसी पिता पनजलियां।
प्रेम नेम दुबिधा तरंग उठि
मची हिये खलबलियां ।।४।।
धनुस भंगि पितु नेम प्रेम मम
राखि लियो बिधि भलियां।
सो इच्छा इकान्त बिहरन अब
पुरई भुज गर डलियां ।।५।।

(पिया हो) मन की मनहीं माहिँ रही—
तुव मन निज कर केस सँवारन लाजन नाहिं कही ।।१।।
सो घर जरउ जहां निज मन भरि
पिय मन रखि न रही।
चाहि चाहि मन पछितायो बहु
नाहक नाहिँ कही ।।२।।
सहस सहचरी नित घर घेरत
परी लाज के फंद।
अँखियां भरि कबहूं नहिँ निरखीं
तुव मुख - पूरन - चंद ।।३।।
यह बन निज कर नाथ सँवारत
वेनी गुंथत बनाय।
को बड़ भागिनि मो सम तिहुंपुर
यह सुख जाहि जनाय ।।४।।
कोटि मनोज लजावन भावन
तुव छवि पीयत पीय।
अँखियां बहुत दिनन की प्यासीं
नेकु अघात न हीय ।।५।।

जियत नहिं बे पानी को मीन-
रतनाकर करिवर की मोतिया बे पानी छवि हीन ।।१।।
बे पानी सर राजहंस लखि
होत बहुत बेहाल।
तान अलाप मृदंग न भावत
बे पानी को ताल ।।२।।
लहलहात खेतन बिच शाली-
बे पानी जु सुखात।
लोह घावहू बे पानी के
छन छन बहुत दुखात ।।३।।
प्राननाथ बे पानी व्यञ्जन
कोऊ न सरस सुहात।
बे पानी के नर नारी जग
अति खल नीच लखात ।।४।।
हम अबला पुनि चार पानि कर
पकरयो आप बनाय।
बे पानी अब तुव अनुगामी
कहो अनत कस जाय ।।५।।

१९०१

# पं० बागीश्वर मिश्र

## आकाशमंडल

खड़ा हुआ मैं, निकल के घर से,
गगन में तारे, चमक रहे थे।
सभी अनोखे, सभी मनोहर,
सभी प्रभा से, दमक रहे थे।
अपूर्व गहने, रजत के पहने,
अपार छवि से, छमक रहे थे।
मनो प्रतीक्षा, करैं किसी की,
इसी से मग में ठमक रहे थे॥

फिरीं जो आँखें इधर अचानक,
मयंक बानक बना के आया।
रहे जो पहले बने रुपहले,
उन्हें सुनहली छटा दिखाया।
विचारने वे लगे चकित हो
बदन में शोभा कहाँ से लाया।
कहाँ की ऐसी अनूप झाँकी,
स्वरूप अपना कहाँ बनाया?

किया है हमको बड़ा ही लज्जित,
दिखा सुसज्जित शरीर प्यारे।
घमंड हम को बड़ा था मन में,
इसी से सबसे खड़े थे न्यारे।
परन्तु देखा इसे है जब से,
सुरंग धारे तिलक सँवारे।
तभी से तन में बड़ी जलन है,
कहीं कलन है कसक के मारे॥

"सदैव पति हैं यही हमारे" कहा
क्षमा ने "न बैर करिये।
प्रभाव इनका प्रगट न तुम पर,
चलो इन्हीं के चरन को धरिये।
स्वभाव इनका बड़ा ही शीतल,
कहे से मेरे नहीं मुकरिये।
इन्हें सुधाकर, कहते हैं सब,
वृथा न प्यारे हृदय में जरिये॥

सुराज्य* इनका अतीव विस्तृत,
पहाड़ खाड़ी जहाँ मरुत हैं।
सदैव शास्त्रानुसार जिसके,
पितर निवासी रहे बहुत हैं।
गमन करैं हैं सदा गगन में,
विमान इनके तुरंग युत हैं।
द्विजेश इनको मनुष्य कहते,
प्रधान अत्री ऋषीश सुत हैं।"

कहा ग्रहों ने य बात सुन कर,
"किया है तुमने बिचार उत्तम।
जदपि बहुत है पसार अपना,
असार तो भी बिना पराक्रम।
धरा, हमारे समान तुम हो,
बड़े हैं बिधु से कई गुना हम।
स्वयं प्रकाशित नहीं कदाचित,
इसी से अपना प्रताप है कम।"

"कहो न ऐसे वचन कभी तुम,
बिना हमारा प्रभेद जाने।"
उपग्रहों ने कहा कड़क कर
लिये अहंता स्वतन्द्रि ताने।
'मयंक भी है हमारे ऐसा
किया है भ्रम यह समीपता ने।
दिया प्रतिष्ठा इसी से भू ने,
इसी में उसने बिनोद माने।

दिवस† अठाइस लगाके लगभग,
प्रदक्षिणा वह उसी की करता।
इसी से उससे प्रसन्न है वह,
लगा लिया है बचत का परता।

---

*कहते हैं कि चन्द्रलोक का व्यास २१६० मील है और उस पर सृष्टि का होना भी निश्चित है।

† पृथ्वी की एक परिक्रमा में चन्द्र को २७ दिन ७ घन्टे ४३ मिनट और ११$\frac{1}{2}$ सेकण्ड लगते हैं। यह भी एक उपग्रह है।

स्वलाभकारी बिचार करके,
प्रदान कर दी उसे अमरता।
स्वयं प्रकाशित नहीं है वह भी,
इसी से यह है अधिक अखरता।"

"बचन हमारा प्रमाण मानो"
कहा धरा ने तुरन्त सब से।
"समानता की तुम्हें शशी से,
हवा लगी है बताओ कब से?
महत्त्व इनका हमें विदित है,
रचा है विधि ने प्रपंच जब से।
पता तुम्हारा अभी लगा है,
विचार कर लो तनिक भी अब से।

जदपि उचित है कथन तुम्हारा,
पड़ा है उन पर प्रकाश रवि से।
तथापि उनकी प्रदीप्ति सुन्दर,
सदा प्रशंसित रही सुकवि से।
उन्हीं से औषधि हुई हैं रुज में,
नहीं हैं जो कम कदापि पबि से।
कहाँ हैं जग में सजीव ऐसे,
न मोह जावें सुधांशु छबि से!

नहीं हैं मुझ में मनुष्य वे जो
न कौमुदी से प्रमोद पाते।
कहाँ न कैरव हुए प्रफुल्लित
कहाँ न तस्कर रहे लुकाते?
इसी से उसकी हुई प्रशंसा
इसी से मानव सुकीर्ति गाते"
अनेक तारे य सुनके प्रमुदित
हुए हैं सहमत रहे जो जाते॥

"सदैव इससे हुए उपकृत
मनुष्य उससे प्रसन्न हैं अति।
यही है कारण महत्व का भी"
बखानने वे लगे रसा प्रति।
"परोपकारी सदा सुखी है
उसीका यश है उसीकी उन्नति।
इसी से सब विधि सुयोग्य है शशि
चलो हमारा बनेगा वह पति॥"

हुई यथोचित सभी की सम्मति
चले वहाँ पर बने ठने से।
चतुर्दिशा में पहुँच के घेरा
रहे ठसक वे वहाँ घने से।
अधीश अपना उसे बनाया
लगे चमकने उसी कने से।
तभी से मंगल हुआ गगन में
बितान नीले रहे तने से॥

१९०२

❀ ❀ ❀

# बाबू काशीप्रसाद जायसवाल

## कवि-कीर्ति

जगत-विजेता वीर धरा सारी अपनावत।
कर गहि खर करवाल महा-महिपाल कँपावत॥१॥
विक्रम विकट दिखाय सिंह कटि काटि गिरावत।
रवि-सम प्रबल प्रताप आपनो अति फैलावत॥२॥
देश-देश सविशेष ध्वजा निज उच्च उड़ावत।
दुर्गम दुर्ग, अनेक सेतु, प्राचीर उठावत॥३॥
अति अद्भुत रमणीय राजधानी निरमावत।
दै अपनो प्रतिरूप प्रचुर मुद्राहु चलावत॥४॥
पै ये एकहु नाहिँ नाम चिरजीवि बनावत।
कवि-कीरति के सौंह नम्र बनि शीश नवावत॥५॥
नृपति-सिकन्दर-चिन्ह आज हम कहूं न पावें।
चन्द्रगुप्त की कहौ कहां हम ठांव बतावें॥६॥

पै कवि-वर प्राचीन, लखौ, अबलौं सब बोलत।
उनके कृत इतिहास हमारे नैननि खोलत॥७॥
नृप-विक्रम की आज लोग कम कहत कहानी।
कालिदास की किन्तु सुनत अति मीठी बानी॥८॥
हर्षदेव* की कथा हर्ष अब अधिक न देवै।
किन्तु बाण को काव्य काहि नहिं वश करि लेवै?९॥
अवशि पिथौरा-लाट† दिवस कोऊ ढहि जैहै।
किन्तु चन्द की सुयश-छटा छिति छिटकी रैहै॥१०॥
अकबर को वर नाम जगत जो प्रचलितभारी।
नेकु न तुलसीदास-अमरता कर अधिकारी॥११॥
निज प्रतिभा तें विगत बात प्रत्यक्ष दिखावत।
त्यों भविष्य को खैंचि लोक-सन्मुख जो लावत॥१२॥
अति अन्तर्गत गूढ़ भाव हिय के जो जानत।
अद्भुत उक्ति सुनाय असम्भव सम्भव ठानत॥१३॥

*हर्षवर्द्धन बौद्ध जो कान्यकुब्ज का राजा था, और जिसके यहाँ बाण थे।
†पृथ्वीराज चौहान की लाट---कुतुब-मीनार।

जाके कृपा-कटाक्ष विलोकत लोक-विदित-नर।
दान-वीर, रण-वीर तथा धन-धर्म्मवीर वर॥१४॥
कर्न* दान बिनु व्यास धर्म्म† की धर्म्म-धीरता।
बालमीकि बिनु रम्य राम की विपुल वीरता॥१५॥
को जानत यहि भांति सविस्तर आज बिचारौ।
कहौ, होय जो कछू कथन अत्युक्ति हमारौ॥१६॥
उत्तम-कविता-दान अनूपम देत सदाहीं।
सबको सदा प्रसन्न करत कुछ लए बिनाहीं॥१७॥
जासु ललित लेखनी विमल-मुद-वितरनहारी।
अनुपमेय, जो, अमर, सदा स्वच्छन्द-विहारी॥१८॥
गुन गनना के पार अहै जो ऐसो कवि-वर!
नमस्कार है ताहि बार शत हाथ जोड़ कर॥१९॥

१९०३

*कर्न = राजा कर्ण।
†धर्म्म = धर्म्मराज, युधिष्ठिर।

❀

# पं० श्रीधर पाठक

## वर्षाऋतु वर्णन

(कालिदास के ऋतुसंहार से)

जिनके उपल नील-उत्पल-निभ,
जल-भर-विनत, नवल-घन-चुम्बित।
जिन पर त्यों सब ओर विकल-रव,
निर्झर विमल बहैं छवि मंडित॥
बिलसैं मुदित मयूर नृत्य-रत,
अगनित वृन्द, अमित आनन्दित।
सो मम प्राण-प्रिये! पर्वत-वर
करैं चाह-युत चित्त उमंगित॥१६॥
अर्जुन, साल, कदम्ब, केतकी के
कानन कम्पायमान कर,
उनके कुसुमों के सौरभ से होवै गर्भित
ऐसा सुखद समीर, मेघ-जल-सीकर
से होकर शीतलतर
किस्के मन को करै नहीं उत्सुक और चित्रित! १७॥

सुठि चीकने चारु घने कचभार,
नितम्बन लों बिथुरावती हैं।
अवतंस सुगन्धित फूलन के
गुथि श्रौनन सोभा सजावती हैं।
कुच दुंदन कों पहराय हरा
मुख सौंधी सुरा महकावती हैं।
इमि सामन में मन कामिन के तिय
काम की ज्योति जगावती हैं॥१८॥
सौंहनी चंचल बिज्जुलता
मनमौंहनी इन्द्रकमान सुहावत।
त्यों कजरारे भरे बदरा घन-
घोरत औ धुरवा धरि धावत।
नारिन की नवरूप छटा मणि
कुण्डल कौंधनी जीय लुभावत।

पावस में परदेसिन कौ मन
ये सबरे एक संग चुरावत ॥१९॥
माला कदम्ब नव केसर केतकी की
बाला बना के पहनैं सिर पै सजीली।
कानों के बीच अवतंस तथा अनूठे
गूंथे हुए ककुभ की कलियों के बांके ॥२०॥
स्याम अगरु मिश्रित चन्दन रस-
चर्चित सुठि मृदु अंग किये।
कुसुम-रचित अवतंस-सुरभि-कृत
केश-पाश छवि-राशि लिये॥
सुनि जलधर घहरान सुरत-सुख-
रस-लोभिनि हुलसाय हिये।
जायँ सांझ ही त्वरित सेज-गृह
तजि गुरुगृह नव वाम प्रिये! ॥२१॥
नीले सरोज के पत्रन कौ सौ खरौ
जिनकौ रंग नीलौ सुहावत।
वारि के भार झुके बदरा मृदु
व्यारि सों मन्द चलैं छवि पावत॥
इन्द्र के चाप की बांकी छटा
नव सोभा सनी सुखमा सरसावत।
पीतम दूरि गये जिनके तिन
तीयन कौ मन लै तरसावत ॥२२॥
फूलि कदम्ब उठे चहुं ओर
सोई मन कौ मनु मोद प्रकास है।
व्यारि चले तें हिलें तरु डार
सोई मनु आनँद नृत्य विलास है।
कांटेन सों युत केतकी सोहै
सोई रस की मुसिक्यानि सहास है।
ताप सों मुक्त सिंची नव नीर सों
यों वनभूमि दिखावै हुलास है ॥२३॥
सिर बकुल-फूलयुत-मृदुल मालती माला।
विकसित-बन-कुसुम-समेत यूथिका-जाला॥
त्यों मुकुलित-नवल-कदम्ब ललित छविवारे।
लै कर्नफूल सुठि रचत लगत जो प्यारे॥
इमि पावस प्रेमी प्रकृत प्रेमरस भीनौ।
बनि प्रीतम जनु सिंगार तियन कौ कीनो ॥२४॥
१९०३

❀ ❀ ❀

# राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

## (१) अविवेकी मेघ

'अन्योक्ति'

धान के खेतन पै न परैं, जल पाहन रेतन पै ढरकावैं
बागबगीचन सींचन छाँड़ि कै सिन्धु पै नीर उलीचन धावैं
संपत पूरे अधूरे विवेक के दानके रूरे विधान भुलावैं
मूसरचन्द ये मूसरधार धराधर ऊसर पै बरसावैं
१९०३

## (२) विष्णु भगवान का वामनावतार

(एक बावाँरूपी चम्पू)

इन्द्र की सवारी जा रही थी। दुर्वासा ऋषि ने अपने गले की प्रसूनमाला उनको दी। उन्होंने दुर्वासा के परोक्ष में वह माला अपने हाथी को पहना दी। इस अवज्ञा का वृत्तान्त जानकर ऋषि ने इन्द्र को शाप दिया कि तुम पदभ्रष्ट होगे।

समुद्रमथन से प्राप्त हुए अमृत से असुरगण जब से विमुख रक्खे गये थे तभी से वे लोग देवताओं से बदला लेने को व्याकुल थे। अवसर पाकर उन्होंने इन्द्रलोक पर चढ़ाई की और विजय पाई। देवता अत्यन्त दु:खित हुए।